संस्थापक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

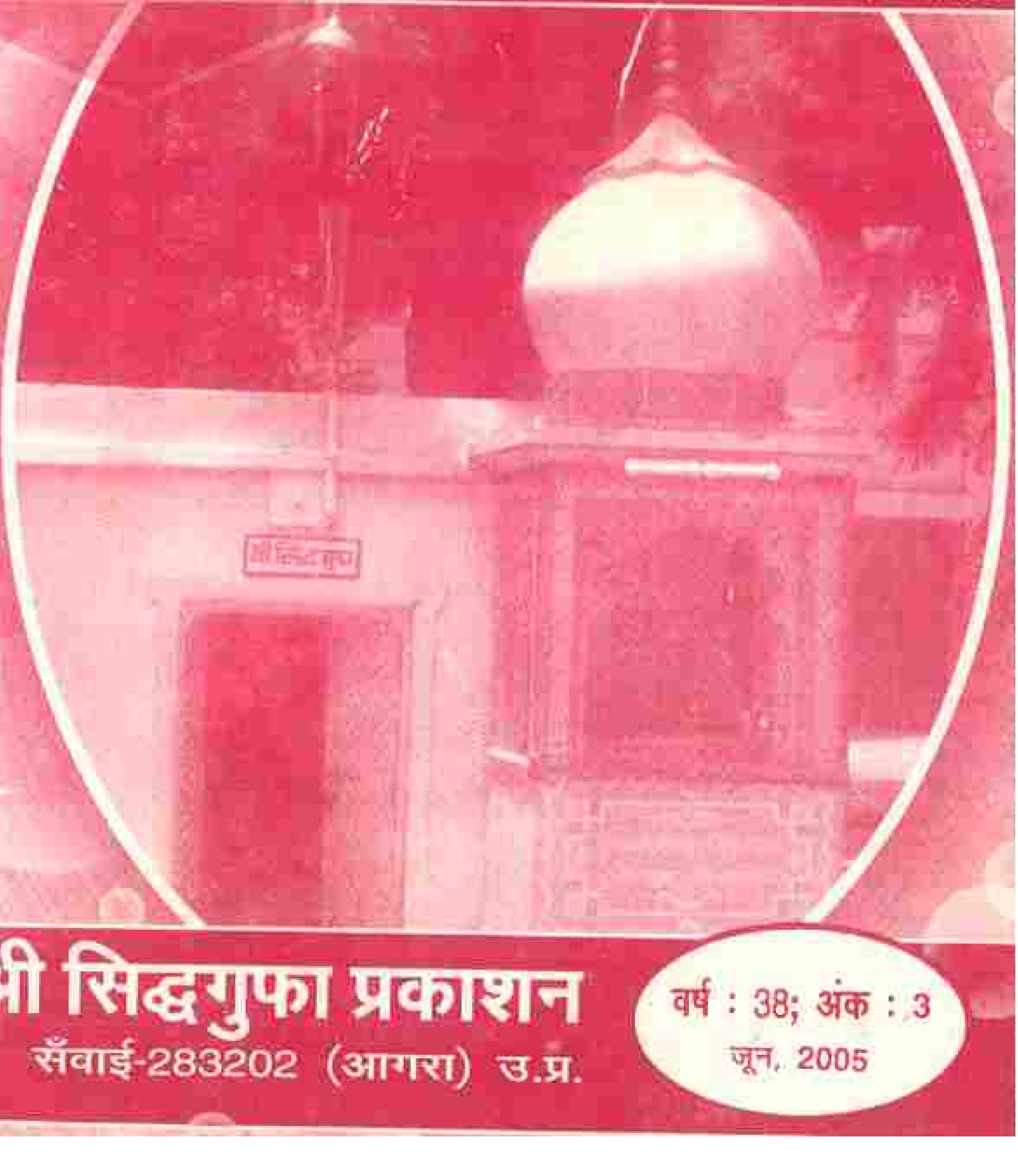

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 38; अंक : 3
जून, 2005

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- शास्त्रीय सिद्धान्तों का निर्णायक या निर्माता कौन ? (विशेष लेख) . 3
- सम्पादकीय 8
- श्री प्रभु चरणों में समर्पित – राजेश कुमार सिंह (बलिया) 10
- तुम हरले भव का चक्कर – प्रेमपाल सिंह पवाँर (पोथा, अलीगढ़) 10
- सहजो बाई की वैराग्यमयी साधना – डा० विजय सिंह (गोरखपुर) 11
- श्री महाप्रभुजी का चिकित्सा क्षेत्र में विशेष योगदान –अवनीश भटनागर.. 14
- भजन – सोनिया गोयल (सहारनपुर) 19
- महाशक्ति कुण्डलिनी स्तवः – मोतीलाल अध्यापक (कासगंज) 20
- अभ्यास और वैराग्य – जनक कुलश्रेष्ठ (ग्वालियर) 22
- सद्गुरुदेव और परमात्मा की एकरूपता – रचना शर्मा (गंगापुर सिटी) .. 25
- संस्कार शक्ति व साधना शक्ति – कु० रुक्मिणी वर्मा 28
- महात्मा अमीरानन्द – राजेश कुमार श्रीवास्तव 33
- जानलेवा दुर्घटना से रक्षा – केशव देव उपाध्याय (वाराणसी)........ 38

एक प्रति	:	रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	:	रु. 100-00
द्विवार्षिक	:	रु. 190-00
आजीवन	:	रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 38
अंक 3

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्यानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

जून
2005

स्तुति

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने।
पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च।।
नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्रष्ट्रे सवार्थवेदिने।
नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने।।
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये।
नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे।।

(कूर्मपुराण ६/११-१२-१३)

अर्थात्

देवाधिदेव, पुराण पुरुष, सनातन, जयस्वरूप परमेष्ठी ब्रह्म को नमस्कार है। स्रष्टि करने वाले तथा सभी अर्थों के ज्ञाता स्वयम्भू! आपको नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, वेधा, परमात्मा को नमस्कार है। विश्व के उत्पत्ति-स्थान, देवों के हितकारी, वासुदेव, नारायणदेव विष्णु को नमस्कार है।

अमृतकण

चिन्तात्र जागरोद्वेगौ तानवं मलिनाङ्गता।
प्रलापो व्याधिरुन्मादो मोहमृत्युर्दशा दश।।

(उज्ज्वलनीलमणि श्रृ. १५३)

चिन्ता, जागरण, उद्वेग, कृशता, मलिनांगता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु– ये ही विरह की दस दशाएँ हैं।

❊ ❊ ❊

उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः।
आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः।।

(श्री मद्भागवत १०/६०/२०)

हम आत्मलाभ से ही पूर्ण होने के कारण स्त्री, पुत्र और धनादि की कामना नही रखते। हम उदासीन हैं, देह और गृह में हमारी आसक्ति नहीं है। जैसे दीपक की ज्योति केवल प्रकाश करके साक्षी मात्र रहती है, वैसे ही हम समस्त क्रियाओं के केवल साक्षी मात्र ही हैं।

❊ ❊ ❊

सम्यंमसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयांकितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते।।

(भक्तिरसामृत सिन्धु पूर्व० ४/१)

भाव अथवा रति जब प्रगाढ़ता प्राप्त करती है और उसके कारण चित्त भलीभाँति द्रवित होकर भगवान के प्रति अतिशय ममतासम्पन्न होता है, तब उसे 'प्रेम' कहते हैं।

❊ ❊ ❊

सर्वे रसाश्च भावाश्च तरंगा इव वारिधौ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति यत्र स प्रेमसंज्ञकः।।

(चैतन्य चन्द्रोदय ३/८)

जहाँ सभी रस और भाव समुद्र में तरंगतुल्य उन्मज्जित और निमज्जित होते हैं, वह प्रेम नाम से प्रथित है। आत्मीय भाव से आकर्षक प्रेमोत्पादक है। आत्मभाव में प्रतिष्ठा प्रेमी की पूर्णता है।

❊ ❊ ❊

विशेष लेख

मातृवान् पितृवान् आचार्यवान्हि पुरुषो वेद

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

देखो ! मनुष्य को परमात्मा की प्राप्ति कराने में जिनका हाथ होता है वे हैं–आदर्श माता, आदर्श पिता तथा आदर्श सद्‌गुरु। जिस मनुष्य को अच्छी माँ, अच्छे पिता और अच्छे सद्‌गुरु मिले हों वह परमात्मा को पा जाया करता है। बालक की पहली गुरु माँ होती है। मैंने तुम्हें बताया था कि हमारे एक योगी बच्चे ने पहले ही संदेश दे दिया था कि मेरी माता को, जिसके पेट में मैं आ रहा हूँ, मेरा पिता बिल्कुल क्रोध न दिलाये। मातृवान् व्यक्ति कौन होता है ? इसका उत्तर हमारे शास्त्रों में मिलता है– **प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृवान्** अर्थात् जिसकी माता प्रशस्ता हो, धार्मिक विचारों की हो तथा विदुषी हो वह व्यक्ति मातृवान् कहलाता है। जब माँ के उदर में बच्चा आ जाये तो माता को सात्विक व पौष्टिक भोजन जैसे घी, दूध आदि से युक्त भोजन देना चाहिये। उसे ब्राह्मी, शंखपुष्पी, शतावरी आदि का पाक खिलाना चाहिये इससे बच्चा गर्भ में ही पुष्टि पा जाता है। ऐसा बच्चा जीवन भर बीमार नहीं होता। गर्भावस्था में माँ को उपनिषद्, गीता आदि सुनाने चाहिये ताकि उसके मन में दिव्यता आ जाये। उसे तीर्थाटन कराये जाने चाहिए। ऋषियों तथा महापुरुषों के दर्शन कराये जाने चाहिये। माँ गर्भावस्था में यदि मन्त्र जाप करती है, योगियों तथा महापुरुषों के चरित्र पढ़ती है, शास्त्र श्रवण या मनन करती है तो इसका प्रभाव बच्चे पर पड़ता है। बच्चा स्वाभाविक ही धार्मिक, भगवान का भक्त तथा योगी होगा। गर्भिणी को कभी क्रोध नहीं दिलाना चाहिये और न ही उसे सताना चाहिये। गर्भावस्था में माँ को मिर्च, मसाले व अत्यधिक खट्टे पदार्थ नही खाने चाहिये। इससे उदरस्थ बालक को कष्ट होता है। उसे अपने आहार–विहार को सन्तुलित रखना चाहिये। गर्भ से बाहर आने के बाद माँ उसे मदालसा की तरह कान में उपदेश करे–

शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरञ्जोऽसि संसारमाया परिवर्जितोऽसि।

इस प्रकार उपदेश करके मदालसा ने अपने पुत्रों को ब्रह्मज्ञानी बना दिया था। इसलिये आदर्श माँ को चाहिये कि इसी प्रकार से उसे ज्ञानोपदेश करे। इस प्रकार से बच्चे में उज्जवल संस्कार डाले जायें तो ऐसा बच्चा आगे चलकर योगी बन जाया करता है। गर्भावस्था में माँ को सिनेमा–थियेटर नहीं जाना चाहिये। वासनिक तथा रसिक दृश्य नही देखने चाहिये। आजकल गर्भिणी स्त्री को मनोरंजन के लिये सिनेमा, नाच तथा अन्य कई

प्रकार के अश्लील दृश्य दिखाये जाते हैं। बच्चे पर इसका कुप्रभाव पड़ता है। उसमें भी वासनिक संस्कार पेट में ही पड़ जाते हैं। प्राचीन काल में मातायें बच्चे को पेट में ही संस्कारवान बनाती थीं। महाभारत में एक प्रकरण आता है। युद्ध के मैदान में द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की। इस चक्रव्यूह को अर्जुन के अतिरिक्त कोई तोड़ना नहीं जानता था। कौरव पक्ष के सैनिक अर्जुन को ललकार कर दूसरी दिशा में ले गये। पाण्डवों को चिन्ता व्यापने लगी। उस समय अभिमन्यु अपने ताऊ युधिष्ठिर से कहने लगा–"ताऊजी ! आप चिन्ता न करें। इसके छः चक्र मैं तोड़ दूँगा। सातवें चक्र को तोड़ने का मुझे ज्ञान नहीं है। युधिष्ठिर ने पूछा– "छः चक्र तुम कैसे तोड़ दोगे ? तुम्हें किसने सिखाया है ?" अभिमन्यु कहने लगा– "मैं जब अपनी माँ सुभद्रा के पेट में था, तब मेरे पिता अर्जुन ने उसे चक्रव्यूह तोड़ने के बारे में समझाया था। मैं भी पेट में सब वृतान्त सुन रहा था। सातवें चक्र के विषय में जब मेरे पिता समझा रहे थे, मेरी माँ को नींद आ गई। इस कारण से मैं भी सातवें चक्र के विषय में जानने से वंचित रह गया। "युधिष्ठिर ने कहा–ठीक है। तुम छः चक्र तोड़ लो सातवाँ हम लोग देख लेंगे।" भीम कहने लगा– "सातवाँ चक्र मैं तोड़ दूँगा।" अभिमन्यु ने छः चक्र तो तोड़ लिये किन्तु सातवाँ चक्र तोड़ न सका और मारा गया। अस्तु ! इस प्रकार होता है गर्भिणी को दी गई शिक्षा का बच्चे पर प्रभाव। बच्चे को बाल्यावस्था में भक्ति की बातें, धर्म की बातें, सदाचार की बातें, गुरु भक्ति की बातें बतानी चाहिये। इसका बहुत अच्छा प्रभाव बालक के मन पर पड़ता है और यह प्रभाव जीवन भर रहता है। आजकल स्त्रियाँ बच्चे को भूतप्रेत, चुडैल, डंकिनी का डर दिखाया करती है, बच्चा बचपन से ही डरपोक बन जाता है। बच्चा माँ पर पूर्ण विश्वास करता है। माँ ही उसका सब कुछ होती है इसलिये उसकी अच्छी व बुरी शिक्षा का उस पर तत्काल व गहरा प्रभाव पड़ता है। संसार में जितने भी महापुरुष हुये हैं वे सभी माता की सद्शिक्षा के कारण ही महान हुये। गोपी चन्द, भतृहरि आदि बहुत से योगी इस पृथ्वी पर अजर अमर होकर विचरण कर रहे हैं। उनको भी बनाने वाली माँ ही थी। गोपी चन्द की माँ उसके राजसी वैभव तथा ठाट–बाट युक्त जीवन होने के बावजूद भी उसके विषय में चिन्तित रहा करती थी। उनकी चिन्ता को भाँपते हुये एक दिन गोपी चन्द ने पूछा– "माँ ! क्या बात है, आप उदास दिखाई देती हैं। किसी सेवक अथवा और किसी ने आप की आज्ञा की अवहेलना की है या किसी ने आज्ञा का पालन नहीं किया है। आप तुरन्त मुझे बतावें मैं उस व्यक्ति को तुरन्त उचित दण्ड दूँगा। उसकी माँ कहने लगी– " नहीं बेटा ! मुझे किसी और के कारण परेशानी नहीं है। मुझे तो तेरे विषय में ही चिन्ता है। तेरा यह ठाट बाट, सुन्दर शरीर एक दिन मिट्टी में मिल जायेगा। इसलिये यदि तू योगी बन जाये तो अजर अमर हो जायेगा और काल के मुख से बच जायेगा।" इस प्रकार से माँ ने उसे जगत की नश्वरता का बोध कराया और उसे योगी बनने का उपदेश दिया। माँ के वचनों को मान कर गोपी चन्द ने सब राज पाट छोड़ कर योगी गुरु की शरण ले ली और अपने को कृतार्थ बना लिया। गोपी चन्द आज अजर अमर होकर सिद्ध योगी

के रूप में पूजित हो रहे हैं। यह होता है माँ के उपदेश का बच्चे पर प्रभाव। इस प्रकार की मातायें ही बच्चे का सच्चा हित करती हैं।

माता की शिक्षा के बाद पिता की बारी आती है। आजकल माता–पिता बच्चों को बचपन में ही नाचना सिखाते हैं। सिनेमा, नाटक देखने भेज देते हैं। बच्चा बचपन में ही रसिकता की बातें सीख लेता है और उसमें रसिकता के ही संस्कार दृढ़ हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि युवावस्था से पहले–पहले ही उसके शरीर में शक्ति का ह्रास हो जाता है और कुछ भी करने की योग्यता उसमें नहीं होती। आजकल की शिक्षा प्रणाली भी मानव को पतन की ओर ले जाने वाली है। पाठशालाओं में भी चरित्र गठन की शिक्षा का अभाव होता जा रहा है। हमारे ऋषियों का प्राचीन सिद्धान्त है। उन्होंने चार आश्रमों की व्यवस्था बनाई थी। उनमें पहला आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम था। पिता–सात–आठ वर्ष के बच्चे को गुरुकुल में भेज देता था। वहाँ पर सात्विक आहार खिलाया जाता था, गौओं का दूध पिलाया जाता था। उन्हें योगासन कराये जाते थे। प्राणायाम की शिक्षा दी जाती थी। व्यायाम करने तथा प्राणायाम करने से वीर्य सारे शरीर में व्यापक हो जाता है। जिसे वह ओज–तेज से भर जाता है। उसे वासना के दर्शन कराये ही नहीं जाते थे। इससे वह ऊर्ध्वरेतर बन जाता था। वासना का चिन्तन करने से वीर्य नाभिमण्डल में आ जाता है, जिसका पतन अवश्यम्भावी रहता है। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द जी ने ऐसे आर्ष सिद्धान्त चलाये थे जिन पर चलकर मनुष्य योगी बन सकता है। उन्होंने लड़के लड़कियों के लिये अलग–अलग गुरुकुलों की स्थापना की थी। इस प्रकार उन्होंने हमें ऋषियों की प्राचीन पद्धति पर चलना सिखाया। गुरुकुलों में ब्रह्मचारी वेद पढ़ता था, उपनिषद पढ़ता था, ब्रह्मचर्य से रहता था। सालवन जिला करनाल में एक बार हमारे सामने एक महात्मा आये थे। इनके साथ में चार ब्रह्मचारी थे। ये बड़े तेजस्वी मालूम पड़ते थे। वहाँ पर कई और विद्वान भी आये थे। वे छोटे–छोटे लड़के धारा प्रवाह से अनुप्रास युक्त संस्कृत बोल रहे थे। महात्मा जी से पूछा–इनमें ऐसी योग्यता कैसे आ गई? महात्मा भी सत्यवादी थे। उन्होंने कहा– ये सब जंगल में रहते हैं। साग–पता व मोटा अनाज खाते हैं। इन्हें गौओं का दूध पिलाया जाता है। इन्हें आसन व प्राणायाम कराया जाता है इसलिये इनके जीवन में ओज–तेज भर गया है।

प्राचीन काल में पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य आश्रम का नियम था। नैष्ठिक ब्रह्मचारी अड़तालीस वर्ष तक भी रह सकता है। ब्रह्मचर्य आश्रम में वह पूर्ण विद्वान, पूर्ण योगी बन जाता था। दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि की योग्यता उसमें उस समय से ही आ जाती थी। उसको गुरुदेव योग के अंगों की साधना भी साथ–साथ कराया करते थे। इसके बाद ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया करता था। जिसने इतने दिनों तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन किया हो गृहस्थ में पत्नी के सम्पर्क में आने पर भी वासना उसके अन्दर नहीं होती। केवल मात्र सन्तानोत्पत्ति के लिये पत्नी से सम्पर्क करते थे। उन्हें भोगों में कोई आनन्द नहीं आता था। उससे पति–पत्नी में हार्दिक प्रेम बना रहता था। जो लोग वासना भोगी होते हैं, उनकी आपस

में रोज लड़ाई रहती थी। अस्तु !

महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि जन्म से लेकर पाँचवें वर्ष तक बालक को माता सद् शिक्षा दे। वस्तुतः माँ का प्यार पाया हुआ बालक संसार में सबसे प्यार करता है। माता का दर्जा संसार में सबसे बड़ा है। **"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"** अर्थात् माता और जन्म भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर होती है। जब पाण्डव वनवास काल में वन में विचरण कर रहे थे तो धर्मराज ने यक्ष का रूप धारण करके उनसे प्रश्न पूछना चाहा। अर्जुन भीम आदि ने उसके प्रश्नों की परवाह नहीं की और वे यक्ष के कोप भाजन बने। अन्त में युधिष्ठिर पानी लेने गया। यक्ष ने उनसे भी प्रश्नों का उत्तर देने को कहा। युधिष्ठिर उत्तर देने को तैयार हुये। यक्ष ने उनसे कई प्रश्न किये। सभी का ठीक उत्तर युधिष्ठिर ने दे दिया। उन पूछे गये प्रश्नों में एक प्रश्न था कि भूमि में कौन बड़ा है ? तो युधिष्ठिर ने जवाब में कहा– **"माता गुरुतरा भूमेः"** भूमि से भी बडी माँ है। इस प्रकार से माँ की श्रेष्ठता बताई गई है। माँ द्वारा शिक्षा दे चुकने के बाद पिता बालक को सद् शिक्षा देता था। पिता का कर्तव्य है कि वह बालक को ऊँची से ऊँची शिक्षा दिलाये। इसके लिये योग्य से योग्य आचार्य के पास उसे छोड दे। पिता को यह देखना चाहिये कि बच्चे में शुभ संस्कार भरे जा रहे हैं या नहीं। जिन बच्चों को पिता का संरक्षण प्राप्त नहीं होता वे प्रायः मार्ग से भटक जाया करते हैं। इसलिये यदि किसी को विद्वान व आध्यात्मिक पिता मिल जाये वह बालक सच्चे अर्थों में पितृवान हो जाता है। पिता अपने आदर्श युक्त आचरण से बच्चे में आदर्श संस्कार डाले । इस प्रकार करने पर उस बालक की जीवन भित्ति मजबूत हो जाती है। पिता का संस्कार व आशीर्वाद पाकर व्यक्ति जीवन के क्षेत्र में उतरता है। सदाचार की शिक्षा बालक पहले पिता से सीखता है तत्पश्चात गुरुकुल में उसे दृढ़ता मिलती है। माता पिता को अपने बच्चों में बाल्यावस्थामें ही सद्गुण भर देने चाहिये। अपने से बड़ों को प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने की शिक्षा देनी चाहिये। बड़ों को प्रणाम करने से उनके आशीर्वाद स्वरूप आयु, विद्या, यश और बल की प्राप्ति होती है। मनु जी महाराज कहते हैं–

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।

आजकल ऐसे माँ–बाप कम ही हैं जो अपने बच्चों को सदाचार व शिष्टाचार सिखाते हों बच्चों को बड़ों को प्रणाम करना सिखाना चाहिये। प्रणाम करने का मतलब है, बड़ों से शक्ति लेना। आशीर्वाद देने का अर्थ है शक्ति देना। अच्छे माँ बाप अपने बच्चों को सिखाते हैं– बेटा! बड़ों को चरण छूकर प्रणाम करो। इस प्रकार बच्चों को प्रणाम करने की आदत बन जाती है। मुझे एक बच्चे की याद आई। अमृतसर में एक लड़का था, उसका नाम था घुग्घु। वह अपने से बड़े सभी को प्रणाम किया करता था। आनन्द कन्द श्री प्रभु जी ने उसके इस गुण पर प्रसन्न होकर

अपने गले से एक फूल माला उतार कर दे दी थी। इसके फलस्वरूप उसे भगवान श्री कृष्ण के बराबर दर्शन होने लगे। वह श्री कृष्ण को अपना "दोस्त" कहता था। उसकी माँ श्री प्रभु जी से कहने लगी–"प्रभु जी! घुग्घु को तो भगवान कृष्ण के दर्शन होते हैं, आप मुझे भी भगवान कृष्ण के दर्शन कराइये।" श्री प्रभु जी कहने लगे–"भगवान का दर्शन तो तुम्हें घुग्घू ही करायेगा। इस पर घुग्घू कहने लगा– नहीं प्रभु जी! माँ मुझे मिठाई खाने को पैसे नहीं देती है।" उसकी माँ ने उसे मिठाई खाने के लिये पैसे दे दिये। घुग्घू कहने लगा–"जाओ, तुम्हें भी दर्शन हो जायेंगे।उसकी माँ किसी काम से अपने मकान के छत पर गई, वहाँ देखती है कि भगवान श्री कृष्ण कुर्सी पर विराजमान हैं। वह मन में सोचने लगी–"क्यों न मैं अपने परिवार के सारे लोगों को दर्शन करा दूँ।" वह भागती–भागती नीचे आई और सब को बुलाकर छत पर ले गई। वे लोग छत पर पहुँचे तो भगवान अन्तर्हित हो चुके थे। घुग्घू की माँ कहने लगी प्रभु जी! यह तो कुछ नहीं हुआ। प्रभु जी कहने लगे दर्शन हो गया, इतना क्या कम है ? वह कहने लगी "प्रभु जी! अच्छी तरह से दर्शन करा दें"। घुग्घू कहने लगा–"प्रभुजी! माँ ने मुझे दो ही पैसे दिये थे, तो दर्शन भी इतने ही हुये"। यह सब प्रणाम करने का फल घुग्घू को मिला। योगी की वाणी आमोघ होती है **"सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रयत्वम्"** उन्हें कोई प्रणाम करता है तो वे कहते हैं–चिरंजीव!' इस प्रकार कहने पर आशीर्वाद फलवती हो जाता है और मनुष्य दीर्घायु बनता है। घुग्घू के माता पिता ने घुग्घू में बड़ों को प्रणाम करने का संस्कार भर दिया। इस सद् गुण को देखकर श्री प्रभु जी के मन में आह्लाद आया और उसका जो परिणाम हुआ वह मैंने तुम्हें बता दिया। गुरुकुल में रहने वाला छात्र पूर्ण रूप से गुरु के नियन्त्रण तथा अनुशासन में रहता था। इस प्रकार से वह पूर्ण गुरु निष्ठ बन जाता था। आचार्य ही उसका शिक्षा एवं दीक्षा गुरु हुआ करता था। गुरुकुल में ही वह प्राणायाम, ध्यान एवं समाधि के अभ्यास में पारंगत हो जाया करता था। ब्रह्मचर्य पालन एवं प्राणायाम से वह महावीर्यवान बन जाता था। उसके जीवन की नींव गुरुकुल में ही मजबूत बन चुकी होती थी। ऐसा व्यक्ति ही प्राणायाम का अधिकारी होता है, त्राटक का अधिकारी होता है तथा अन्य कठिन साधनाओं का भी अधिकारी वही होता है। एक व्यक्ति जो बाजार में जाकर बेहद खटाई खाता है, मिर्च खाता है, खान–पान भी जिसका शुद्ध नहीं है जो वासना भोगी है, ऐसा व्यक्ति यदि प्राणायाम व त्राटक आदि क्रियाओं की बढाई सुनकर उन्हें करने की कोशिश करता है तो वह दुष्परिणाम को भी पायेगा। जो साधक है, विरक्त है, इन्द्रिय लोलुप नहीं है, गुरुनिष्ठ है वह अन्तर्जगत में प्रवेश पाता है। आचार्य के पास रहकर ही बालक तप, त्याग और अनुशासित जीवन जीना सीख जाता है इसी अवस्था में गुरुदेव उसे यम नियमों की साधना कराते हैं। जो गुरुदेव के थपेड़े खाकर अपनी साधना में रत रहता है वह आगे चलकर योगी बन जाता है।

कोई भाग्यवान संस्कारी व्यक्ति ही आदर्श माता, पिता एवं सच्चे सद्गुरु को प्राप्त करता है और जीवन में इन तीनों के द्वारा समय पर दी गयी शिक्षा–दीक्षा से वह यथार्थ मानव बनकर योगी हो जाता है।

❋ ❋ ❋

● सम्पादकीय

विषाद एवं प्रसाद

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

मनुष्य जीवन के दो पहलू हैं एक है विषाद तथा दूसरा प्रसाद। विषाद दुःख, क्लेश, भय, अज्ञान नैराश्य का नाम है जबकि प्रसाद आनन्द, ज्ञान प्रकाश एवं मुक्ति का द्योतक है। विषाद रात्रि है तो प्रसाद दिन है। जीवदशा में व्यक्ति विषाद, अवसाद का शिकार बना रहता है। विषाद एवं दुःख की निवृत्ति ही भारतीय दर्शन वाङ्मय का प्रतिपाद्य विषय है। दुःखों का परिहार करके एकान्तिक आनन्दलाभ करना ही दर्शन का लक्ष्य रहा है। अनादिकाल से ही जीवन के इन दो ज्वलन्त विषयों पर विचार होता रहा है और समाधान खोजा गया है। वेद का उद्घोष है 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' ! अर्थात् हे मनुष्य ! तू अज्ञानान्धकार जन्य दुःख को त्यागकर ज्योतिर्मय परम चेतन की ओर चल। असत् को त्यागकर सत की ओर चल। असत् को त्यागकर सत् को धारण कर। मृत्यु को छोड़कर अमृत का वरण कर।' यही भारतीय ऋषि का आदेश है, सन्देश है।

श्री मद्भगवद्गीता का सूत्रपात अर्जुन के विषाद से ही हुआ है। महाभारत के आसन्न महासमर को सामने पाकर पक्ष–विपक्ष के महारथियों को देखकर अर्जुन अपने से कहता है–''क्या मुझे इस भीषण युद्ध में अपने पूज्य गुरुजनों से, मित्रों से, सम्बन्धियों से युद्ध करना होगा ? आखिर क्यों ? केवल इसलिये कि मैं प्रतिपक्षी आत्मीय जनों को मारकर पृथ्वी का भोग करूँगा, इस पर शासन करूँगा'' ! नहीं नहीं ! मुझे यह सब कुछ नहीं करना है। मैं तो सन्यासी बनकर भीख माँग कर उदरपूर्ति कर लूँगा किन्तु युद्ध जैसे गर्हित कर्म में मैं प्रवृत्त नहीं होऊँगा। ऐसा विषादयुक्त चित हुआ अर्जुन भगवान से कहने लगा– मैं युद्ध नहीं करूँगा क्योंकि इसमें भीषण रक्तपात होगा जिसके लिये मैं ही कारण बनूँगा।'' इस प्रकार अर्जुन के मन में विषाद है। भगवान् कहते हैं तू कायर बन रहा है। तुम्हारे जैसे प्रख्यात धनुर्धर के लिये इस प्रकार की बातें शोभनीय नहीं है। अर्जुन अपने मन की डाँवाडोल स्थिति को जानता हुआ भगवान् कृष्ण से कहता है–प्रभो ! मुझे इस समय सत्यासत्य का बोध नहीं हो रहा है इसलिये जिसमें मेरा हित हो वही आज्ञा दें। मैं आप का शिष्य हूँ। शरणापन्न हुये मुझे आप ठीक मार्ग दर्शन दें।'' अर्जुन के इस प्रकार विनीत वचनों को सुनकर अर्जुन के चित्त के विषाद को दूर करने के उद्देश्य से आत्म तत्व का विस्तार से उपदेश करते हुये श्रीकृष्ण ने आत्मा के अविनाशित्व का निरूपण किया। भगवान् ने प्रथमतः वाणी के द्वारा उपदेश के द्वारा आत्मशक्ति का संचार किया। गीता के रूप में ब्रह्मज्ञान का अद्भुत स्रोत फूट पड़ा। योग एवं समाधि के गूढ़ तत्व का विवेचन करते हुये अध्यात्म प्रसाद के महत्व को समझाया। उन्होंने बताया कि इस अध्यात्म प्रसाद से जीव के सभी दुःखों का नाश हो जाता है–

प्रसादे सर्व दुःखनाम् हानिरस्योप जायते' । इस अध्यात्म प्रसाद की प्राप्ति के पश्चात् किसी भी प्रकार का क्लेश व दुःख अवशेष नहीं रहता। इसी प्रसंग में भगवान् बताते हैं कि रागद्वेष से वियुक्त हुआ आत्मवशी योगी परम आत्म प्रसाद को पा जाता है अमृतत्व को पा जाता है। इस प्रकार से भगवान् ने अठारह अध्याय तक योगामृत पान कराते हुये अर्जुन को शक्तिपात सहित आत्मतत्व का बोध कराया। शक्तिपात के द्वारा अर्जुन को दिव्यदृष्टि दी और अपने योगेश्वर्य का दर्शन कराया। तभी अर्जुन के मोह एवं विषाद का नाश हुआ। अठारहवें अध्याय के अन्तिम श्लोकों में अर्जुन कहते हैं हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है। मुझे आत्म स्मृति प्राप्त हो गई है अब मैं अपने स्वरूप में स्थित हूँ अतः मैं आपके वचनों का पालन अवश्य करूँगा''। इस प्रकार अर्जुन अपने धर्म एवं कर्तव्य पथ पर आरूढ़ हो गया। गीता के अनुसार जब योगी सदा आत्मा से संयुक्त रहता है तब उसके सारे कल्मष-विषाद दूर हो जाते हैं। ब्रह्म संस्पर्श पाता हुआ योगी अत्यन्त सुख का अनुभव करता है।

जीव के विषाद को दूर करने के लिये योग दर्शन में योग ध्यान ही अन्यतम उपाय बताया है। चित्त रजोगुण-तमोगुण से आच्छन्न हो जाता है तभी विषाद होता है उनके हटा दिये जाने पर चित्त अत्यन्त निर्मल हो जाता है तब उसे तत्व ज्ञान का प्रकाश होने लगता है। क्लेशों को दूर करने के लिये चित्त वृत्तियों का निरोध आवश्यक है। योग के सम्प्रज्ञात समाधि की पराकाष्ठा को पा लेने पर योगी को अध्यात्म प्रसाद मिल जाता है। **'निर्विचार वैशार द्येऽध्यात्मप्रसादः'** अर्थात् निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि का वेशारद्य निर्मलता हो जाने पर योगी को अध्यात्म प्रसाद मिलता है अर्थात् अत्यन्त निर्मल हुई बुद्धि में आत्मज्ञान का प्राकट्य ही अध्यात्म प्रसार है। ऐसी बुद्धि प्राप्त हो जाने पर योगी को प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्मतम सभी पदार्थों का एक साथ साक्षात्कार हो जाता है। इस साक्षात्कार का नाम ही अध्यात्म प्रसाद है। इसका ही दूसरा नाम स्फुट प्रज्ञालोक है तथा प्रज्ञा प्रसाद या प्रज्ञा प्रासाद है। इस विषय में एक श्लोक है-

प्रज्ञा प्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्चयति।

अर्थात् प्रज्ञा रूपी प्रसाद पर चढ़ा हुआ शोकरहित प्राज्ञयोगी शोक में पड़े हुये लोकों को उसी प्रकार से देखता है जैसे कोई पहाड़ की चोटी पर खड़ा हुआ मनुष्य पृथ्वी पर खड़े मनुष्यों को देखता है। इसी प्रज्ञा प्रसाद से ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। प्रसाद नाम निर्मलता व प्रसन्नता का है। यह 'कृपा' शब्द का भी द्योतक है। इसे ही भगवान् ने गीता में अनेक स्थलों पर बुद्धियोग के नाम से अभिहित किया है। यज्ञावशिष्ट भोग भी प्रसाद कहलाता है- यज्ञावशिष्ट अमृत को ग्रहण करने वाला सनातन ब्रह्म को पा जाता है।

भगवान को लगाया हुआ भोग अथवा किसी महापुरुष के द्वारा दिया गया पदार्थ प्रसाद कहा जाता है। इसलिये यदि मनुष्य दुःख, विषाद के दलदल से बाहर निकलना चाहता है तो उसे योग के पवित्र मार्ग का अवलम्बन लेना चाहिये। योग से ही दिव्य अविनाशी जीवन मिलता है अतः इस मार्ग का वरण करना चाहिये। ❋❋❋

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

प्रेषक–राजेश कुमार सिंह (बलिया)

इस हारे जिंदगी के , तुम्ही सहारे;
गुरुदेव हमारे प्रभु जी हमारे।
इस जहाँ में न मेरा, ऐतबार है,
बेगाना न अपना, गमख्वार है;
औरों को हसीं, ये लगती है दुनिया;
बस मेरे लिए, तेरा दरबार है;
दिल को न भाये, सत रंगी नजारे;
गुरुदेव हमारे............
मेरा तो हर इक आह, तूफान है;
दिल की बस्ती, प्रभुजी वीरान है;
अनजान बनकर, न देखो मुझे;
अपनालो ये बंदा, एक इंसान है;
आ जाओ इकबार, प्रभु मेरे द्वारे;
गुरुदेव हमारे ....
दिल तड़पता हुआ, गीत गाता है;
यो तेरे इश्क में, मुस्कुराता है;
कब जानेगा चंदा, दर्द चकोरी का,
इस कदर सोच, जी घबराता है;
राजेश कश्ती कब, होये किनारे
गुरुदेव हमारे.............
इस हारे जिंदगी.........

* * *

तुम हरते भव का चक्कर

प्रेमपाल सिंह पवाँर, पोथा (अलीगढ़)

मेरे मन के मोहन चन्दर,
आजा दिल के अन्दर।
जग तो झूठ झमेला है,
दिल में भरा अन्धेरा है।
तू हर दे इसका चक्कर
मेरे मन..............
तू योगी योगेश्वर है,
तू रखता ताकत सब है।
तू आन बैठ मन मन्दिर
मेरे मन.............
जो तेरी शरण में आया,
वो पूरी पावर पाया।
तुम लेते सबसे टक्कर
मेरे मन...........
तुम सिद्ध योग के स्वामी हो,
महावीर वरदानी हो,
तुम करते गुड़ से शक्कर
मेरे मन...............
अब प्रेम शरण में आया,
तुम सा गुरु नहिं पाया।
तुम हरते भव का चक्कर
मेरे मन...........

सहजो बाई की वैराग्यमयी साधना

डा. विजय सिंह, गोरखपुर

अखण्ड जीवन और परमानन्द की प्राप्ति हेतु सद्गुरु शिष्य में शक्ति आधान करके उसे अन्तर्मुख बनाते हैं अभ्यास और वैराग्य के सहारे साधक अपने अन्तःकरण से परिचित होता है। परिष्करण, वैराग्य ताप द्वारा अन्तःकरण का ज्यों ज्यों होता जाता है साधक शनैःशनैः उच्च भूमिकाओं में आरूढ़ गुरु प्रसाद से प्राप्त करता है। सद्गुरु ही आँखें खोलते हैं। लौकिक सम्बन्धों की यथार्थता का भी ज्ञान साधक को होने लगता है तो उसकी निःसारता को समझकर परिपक्व वैराग्य ताप में दग्ध ही साधना कुन्दनवत चमक उठती है।

सहजो ऐसी अवस्था में साधक को क्या करना चाहिये बताते हुये स्वयं समवेद्य सम्बोधन में गा उठी है–

सहजो भजु हरिनाम को तजो जगत सूँ नेह।
अपना तो कोई है नहीं, अपनी सगी न देह।।

अचरज जीवन जगत में, मरिवो सांचो जान।
सहजो औसर जात है, हरि सों ना पहचान।
झूँठा नाता जगत का, झूँठा है घर वास।
यह तनु झूँठा देखि कर, सहजो भई उदास।।

कबीर तो जग–चक्की देखकर रो उठे थे–

चलता चक्की देखकर, दिया कबीरा रोय।
इन दोउ पाटन के बीच से साबुत बचा न कोय।।

सहजो जग सम्बन्धों की ओर तत्त्वपरक नजर से देखती है और कहती है–

कुदुम्ब संघाती बीच में, आदि अन्त नहि होय।
बीच मिले बीचहि गये, सहजो संग न कोय।।

सहजो स्वारथ सब लगे, दारा सुत और बीर।
जीवत ज्योतें बैल ज्यों, मुयें बहावैं सीर।।

अपना क्या है ? रोग, दुःख द्वन्द और मृत्यु को कोई और बँटा नही सकता। स्वार्थान्धता, धन लोलुपता ही संसारी लोगों का सम्बन्ध है। साधक को मृत्यु का भय सचेत होकर जान लेना चाहिये। संसार में सारे सम्बन्ध जीवन तक ही है।

मुख देखें ढाँपे भजे, तड़ से तोड़े नेह।
सहजो पति, सुत, निजहितू, जारि करेंगे स्नेह।।

चाहे कोई सम्राट छत्रधारी हो या कोई टूटी छप्पर में रहने वाला मृत्यु सबका होना है।

निश्चय मरना सहजिया, जीवन की नहिं आश।
कै टूटी सी झोपड़ी, कै मन्दिर में वास।।

यह सब सास्वत सत्य सभी जानते हैं परन्तु अर्न्तबोध न होने से मन (संसारी मन) इसे स्वीकार नहीं करता तथा कालयापन हेतु विषय संग में स्वयं इन्द्रियों सहित नियोजित रहता है। यह वैराग्य बोध भी सद्गुरु की कृपा से ही अन्तःकरण में प्रभारित होता है।

सहजो गुरु परताप सूँ, ऐसी जानि परी।
नहीं भरोसा स्वांस का, आगे मौति खरी।।

मन में मृत्यु की यथार्थता का ज्ञान ही वैराग्य की जननी है। जिसे इस बात की परतीति हो गया वह तत्काल महात्मा बुद्ध की तरह रूपांतरण को प्राप्त होता है।

सद्गुरु प्रदत्त शक्तिपात साधक के जन्म जन्मान्तरों के अवरुद्ध संस्कारों प्रकट कर स्थूल, सूक्ष्म और कारण में दग्ध बीज करता रहता है। इसलिये जिस पर गुरु की कृपा हो, उसको क्या दूर्लभ है, इस तरह की कृपा पाकर धन्य भाव को प्राप्त सहजो बाई के अनुभव को पढ़कर हम सभी को लाभान्वित होना चाहिए। अपनी साधना दशा सहजोबाई ने वर्णन किया है–

सहजो यह मन सिलगता, काम क्रोध की आग।
भली भई गुरु की दया, शील क्षमा का बाग।।
निहचै यह मन डूबता, मोह लोभ की धार।
चरणदास सत गुरु मिले, सहजो लई उबार।।

कितनी साफगोई है सहजो बाई के कथन में, काम क्रोध की आग सद्गुरु कृपा से ही शील और क्षमा में परिवर्तित होता है। महात्मा कबीरदास ने साधना पथ पर आरूढ़ अपने को समझने वाले शिष्यों को अपनी धारदार वाणी में चेताया है–

चलो चलो सब कोई कहै, विरला पहुँचै कोय।
एक कनक और कामिनी, दुर्गम घाटी दोय।।
एक कनक और कामिनी, तजिये भजिये दूर।
गुरु विच डोरे अन्तरा, जम देवै मुख धूर।।

सहजोबाई गुरुभक्ता थी। सद्गुरु की कृपा से उन्होंने सब कुछ प्राप्त किया था। उनके वाणी को हर सिद्धयोग के सुधी पाठकों को अपने ह्रदय पटल पर स्वर्णाक्षरों में उकेर लेना चाहिए। साधकों को लक्ष्य करके वह कहती हैं।

गुरु मग दृढ़ पग राखिये, डिगमिग डिगमिग छांड़।
सहजो टेक टरै नहीं, शूर, सती और मांड़।।

जो आज यहाँ कल वहाँ इधर उधर भटकने में ही अपना सयाना पन समझते हैं। जो यह समझते हैं अब सद्‌गुरु इस आश्रम में नहीं वहाँ अब क्या रखा ? कोई और आश्रम कोई और ठौर देखना ठीक है। ऐसे मतिभ्रष्ट साधकों के प्रति कठिन चेतावनी युक्त सहजो जी का बचन देखें–

गुरु के प्रेम पंथ शिर कीजै। आगा पीछा कबहूँ न दीजै।
गुरु के पंथ हीय सो होई। मारग आन चलो मत कोई।।
गुरु के पंथ पैंज का पूरा। गुरु के पंथ चले कोई शूरा।
गुरु के पंथ नहीं ठग लागैं। गुरु के पंथ कपट भय भाजैं।
गुरु के पंथ चले सतवादी। सहजो पावै भेद अनादि।।

संसय रहित सद्‌गुरु चरणों में निछावर हुआ दृढ़ आस्था वाला कोई साधक जो यह समझता है कि गुरु शरणागत होने पर जो भी अघटित घटित होगा वह स्वीकार्य है। वह कदापि संकट आने पर भी सद्‌गुरु छोड़ किसी अन्य के शरण में नहीं जाता। कोई और साधन नहीं खोजता तथा इस सद्‌गुरु पथ अनुगामी को सत्याचरण वाला होना है तो उसे सद्‌गुरु कृपा से अनादि अनन्त आत्म स्वरूप का ज्ञान प्राप्त अवश्य होता है। सहजो की स्वानुभूति है–

गुरु आज्ञा दृढ़ करि गहै, गुरुमत सहजो चाल।
रोम रोम गुरु को रटै, सो शिष होय निहाल।।

एक गहरी राज की बात सहजो बाई बताती है–

गुरु आज्ञा मानै सोई साधू। गुरु आज्ञा पर भेद अगाधू।
जो कोई गुरु आज्ञा भूले। फिर फिर कष्ट गर्भ में झूलें।।

शिष्य को कैसा होना चाहिए देखें–

सहजो शिष ऐसा भलो, जैसे माटी मोय।
आपा सौंपि कुम्हार कूँ, जो कुछ होय सो होय।।

सिद्धयोग की साधना का मर्म इतनी सहज सचेतक भाषा में गुरु भक्ति पूरित सहजो बाई ने किया है जो हर साधक का साधना पाथेय है।

❊ ❊ ❊

श्री महाप्रभु जी का चिकित्सा क्षेत्र में विशेष योगदान

अवनीश भटनागर (सहारनपुर)

सन् १८८८ को श्री रामनवमी के पावन दिवस पर अमृतसर मे ज्योतिष शिरोमणि पंडित श्री गंडाराम जी के घर में प्रादुर्भूत होने वाले योगीश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी ने जगत के अन्दर अनेक प्रकार के जनकल्याण के कार्य किये। जैसा कि पूर्व समय में तपेदिक रोग का उचित इलाज नहीं था। अच्छी एवं कारगर दवाइयाँ नहीं थी। तपेदिक रोगियों की मृत्युदर अधिक थी। प्रायः टी०बी० सेनोटोरियम में रहकर अपना समय पूरा कर लिया करते थे। हजारों में कोई दो चार मरीज ठीक हो पाते थे बाकी सब क्षयरोग से समाप्त हो जाते थे। जो पारिवारिक जन देखभाल करते थे वे भी प्रायः आगे चलकर उसके शिकार हो जाते क्योंकि यह एक संक्रामक रोग होता है। ऐसे भयंकर रोग की योगीश्वर महाप्रभु जी श्री रामलाल जी ने योग साधनों द्वारा कारगर चिकित्सा की जिसमें महाप्रभुजी श्री रामलाल जी ने एक ऐसा तरीका चिकित्सा का विकसित किया जिसके अन्तर्गत फल तत्व साधनों द्वारा रोगी के मल मूत्र बलगम को पेड़ो की जड़ में डालकर उसके फलों मे रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित करके उन फलों से रोगी की चिकित्सा की जिसे उस समय में एन्टीबायोटिक का प्रयोग श्री महाप्रभु जी द्वारा कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। नासिका द्वारा दुग्धपान कराकर फेफड़ों के अन्दर के जख्मों को ठीक करते थे और इसके पश्चात जीवन तत्व साधन की नौ क्रियाओं के द्वारा जठराग्नि प्रज्जवलित करा करके जीर्ण शरीर के क्षय रोगियों को अतिमात्रा में कच्ची सब्जियाँ, फल, कच्ची चने की दाल, दुग्ध, मलाई आदि का सेवन कराकर शारीरिक पुष्टि एवं बल प्रदान किया। योगीश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी ने इस प्रकार से हजारों जीर्ण तपेदिक रोगियों को ठीक किया यह परम कृपालु महाप्रभु जी का इलाज का अपना स्वयं का निर्माण किया हुआ तरीका था।

जब आनन्दकन्द महाप्रभु जी आसाम में वनों में निवास कर रहे थे तो उस समय जंगली लोगों में एक वृद्धा के स्तन में कोई रोग होने से भारी पीड़ा हो रही थी उन्होंने उसकी चिकित्सा अपने पास से जड़ी, बूटी देकर की थी जिससे उन आदिवासी जंगली लोगों ने उनका खूब सम्मान किया था।

नैपाल के राज परिवार में भी मुंह नहीं खुलने के कारण से रोगी को वैद्य एवं राजवैद्य औषधि नहीं दे पा रहे थे ऐसे समय विकट परिस्थिति में योगीश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी ने अपने पास से औषधि देकर उसको सुंघवाई जिससे उसे तत्काल छींक आ गई और

उसकी नासिका से दो कीड़े निकल कर भूमि पर गिर पड़े जिससे उसका रोग बिना अन्य किसी औषधोपचार के ठीक हो गया और आनन्दकन्द महाप्रभु श्री रामलाल जी को नैपाल के राजदरबार में राजगुरु का सम्मान दिया गया।

इधर संवाई धाम के पास बरहन ग्राम में जब श्री रामलाल महाप्रभु जी ठाकुर दास के घर में विराजमान थे तो उन्होंने ठाकुर दास से प्रसन्न होकर उनको अनेकों आयुर्वेदिक योगों के नुस्खे बताये जिनसे चिकित्सा करने पर वह ख्याति को प्राप्त हो गये और निरक्षर एवं निर्धन ठाकुर दास जाने माने वैद्यराज बन गये।

संवाई ग्राम में जब श्री रामलाल महाप्रभु जी प्यारे लाला कुलश्रेष्ट (कायस्थ) के यहाँ विराजमान थे तो रात्रि में औषधि निर्माण करके सैकड़ों पुड़िया रात्रि में ही बना लिया करते थे। प्रातः आने वाले प्रत्येक रोगी को वही पुड़िया दे देते थे। परन्तु महान आश्चर्य की बात देखने में आती कि यह सभी रोगों में वही पुड़ियायें लाभ दिखाती थी और रोगी रोग मुक्त हो जाते थे।

वर्तमान में भी वह अद्भुत महायोगीश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी आवश्यकता पड़ने पर अपने लाखों के शिष्य प्रशिष्य समाज में जहाँ कहीं रोगानुसार जैसी आवश्यकता होती है उसको औषधियों बता दिया करते हैं। ऐसा बहुत बार देखने में आया है। इससे जो लोग जीवन की आशा छोड़ चुके थे, डाक्टर लोग जवाब दे चुके थे उनको भी जीवन लाभ होते देखा गया है।

चिकित्सा की दृष्टि से दूसरा पहलू यौगिक चिकित्सा का जिसके अन्तर्गत योगीश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी ने अनेकों चिरगुप्त यौगिक साधनों को पुर्नस्थापित और स्वय के द्वारा निर्माण किये गये यौगिक साधनों को प्रकाशित किया जैसे जीवन तत्व साधना, यौवन तत्व साधन, नेतियों के सभी प्रकार जिन्हें संसार में लोग भूल चुके थे। इनमें जीवन तत्व साधन, फल तत्व साधन, एवं यौवन तत्व साधन उनके अपने श्रीमन के द्वारा आविष्कार किये गये थे। जिनसे क्षीण काया वाले व्यक्ति या रोगी व्यक्ति बलशाली होकर अतिशय बलवान हो जाते हैं। जिससे रोगों से उनका पीछा छूट जाता है या साधक जन यदि साधना मार्ग में आगे बढ़ना चाहते हैं तो वह जीवन तत्व साधन करके ओजवान बनकर साधनामार्ग में प्रवेश कर जाते हैं जिससे अधिक समय तक बिना कुछ खाये पिये ही साधना रत रहा जा सकता था और भोजन के नाम पर यदि वह किसी वृक्ष की १०–२० पत्तियों खाकर भी रह जाये तो उसी से पूर्ण तृप्ति प्राप्त हो जाती थी कोई क्षीणता व्याप्त नहीं होती थी। यौवन तत्व साधन से जठराग्नि प्रज्जवलित कराके घी, दुग्ध, मलाई एवं चने की दाल का सेवन बड़ी मात्रा में कराकरके साधको को बलशाली बनाना यह यौवन तत्व साधन कराने का उद्देश्य था।

नेती क्रिया के द्वारा भी श्री रामलाल महाप्रभु जी ने गले से ऊपर के रोगों को जिसमें

नजला, टांसिल, हंजीरे, मस्तिष्क के रोग, कर्ण रोग, मन्द नेत्र ज्योति, को नेति क्रियाओं के द्वारा बढ़ाकर चश्मा हटाना आदि– रोगों को समूल नष्ट किया। नेति क्रिया में चार प्रकार की नेति क्रियायें श्री रामलाल महाप्रभु जी ने करानी आरम्भ की थी सूत्र नेति जल नेति, घृत नेति, दुग्ध नेति। महाप्रभु श्री रामलाल जी ने ही नेति साधन को जगत में पुर्नस्थापित किया था। योग शास्त्रों में नेति क्रिया का वर्णन तो था परन्तु उसको कराने वाला कोई नहीं था। ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी ने घेरण्ड संहिता में नेति क्रिया के विषय में पढ़ा था–

कपाल शोधनी चैव दिव्य दृष्टि प्रदायिनी। जत्रर्ध्वजात रोगौघं नेति राशु निहिन्त च

ब्रह्मचारी जी ने जब नेति क्रिया करनी चाही तो उनको नेति क्रिया कराने वाला कोई व्यक्ति नहीं मिला। एक व्यक्ति के विषय में उन्हें दिल्ली में पता चला तो वह उसके पास गये तो वह व्यक्ति बोला मैं तुम्हें नेति क्रिया करा नहीं सकता हूँ केवल बता सकता हूँ और उसकी सौ रुपया फीस होगी (उस जमाने के सौ रुपये आज कितने होंगे) बाद में श्री गोपालानन्द जी को परम करुणामय श्री रामलाल महाप्रभु जी से सहारनपुर में भेंट हुई जिस नेति साधन और अन्य योग जिज्ञासाओं को लेकर गोपालानन्द जी यत्र तत्र घूम रहे थे और उन्हें समाधान नहीं मिल रहा था श्री रामलाल महाप्रभुजी ने उन्हें उसी नेति साधन और योग प्रचार का निमित्त बना कर लाहौर योग साधन आश्रम का आचार्य बना दिया। करुणामय श्री रामलाल महाप्रभुजी ने नेति क्रियाओं पर अधिकतम जानकारी देने की इच्छा से एक पुस्तक "नेत्र ज्योति प्रकाशिनी नेति" के नाम से ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी से लिखवाई। नेति क्रिया पर इससे अधिक जानकारी विश्व में कोई नहीं दे सकता है।

जीवन तत्व साधन में समस्त शरीर का शोधन करके उत्तम बल प्रदान करके कायाकल्प कर देने वाली सामर्थ्य है। महाप्रभु जी रामलाल जी ने अपने श्री मन से जीवन तत्व साधनों का आविष्कार किया। भगवान शिव ने शिव संहिता में ८४ लाख योगासनों का जिक्र किया है। उनमें से प्राय: ५०–६० योगासन ही प्राय: चलन में हैं आज के अति व्यस्त समय में ५०–६० आसन करना भी प्राय: प्रतिदिन संभव नहीं है। ऐसे में महाप्रभु श्री रामलाल जी द्वारा प्रादुर्भूत जीवन तत्व साधन जिनमें सभी योग आसनों के लाभ विद्यमान हैं और वह थोड़े समय में ही साधक सीख एवं कर सकता है जिसकी क्रियायें अतिशय लाभकारी एवं अति सरल हैं। जिनको ५ वर्ष से लेकर ८५ वर्ष के वृद्ध तक कर सकते हैं इसकी नौ क्रियायें है–

(१) **सर्वोत्तान–** इस क्रिया में शवासन में लेटकर पहले सारा श्वांस बाहर निकाल दें और हाथ की उंगलियों को एक दूसरे में कस कर पलट ले फिर श्वास को गहरी भरते हुये हाथों को सिर के पीछे ले जाकर कुछ देर रुककर फिर श्वांस को छोड़ते हुये वापस हाथों को पेट पर स्थित कर लें। इस प्रकार से ३ से ५ बार तक करें। इससे व्यक्ति के सारे शरीर में स्फूर्ती आती है और अन्य आसनों को करने के लिये तैयार हो जाता है और फेफड़ों में

शुद्ध वायु अधिक मात्रा में पहुँचती है जिससे फेफड़ों का कार्य क्षेत्र बढ़ जाता है जिससे फेफड़े अधिक आक्सीजन ग्रहण करने योग्य बनते हैं यह श्वांस रोग में लाभकारी है।

(२) **स्कन्ध चालन**– इस क्रिया में पद्मासन या सुखासन में बैठ कर दोनों कन्धों को क्रमशः साईकिल के पेडिल की भांति ऊपर नीचे आगे पीछे भी घुमाना चाहिये यह चार प्रकार से किया जा सकता है। इससे गर्दन, फेफड़े, ह्रदय के रोग दूर होते हैं और सरवाइकल स्पॉन्डोलाइटिस के लिये यह क्रिया रामबाण क्रिया है।

(३) **पग चालन**– इस क्रिया में दांया पैर बांये पैर के ऊपर रखकर नाभि पर्यन्त का भाग हिलाते हैं जिससे दोनों पांवों की स्थिति होती है दांये पैर का अंगूठा बाईं तरफ भूमि पर और बांये पैर का अंगूठा दाईं तरफ भूमि पर लगाना चाहिये। छाती और गर्दन अपनी जगह स्थिर रहनी चाहिए। इससे छोटी एवं बड़ी आंत, अमाशय, जिगर, तिल्ली पेन्क्रियास आदि के रोग दूर होते हैं इससे दीर्घकाल की कब्ज का भी नाश हो जाता है। आंतों में जमा मल निकल जाता है जिससे आंते शुद्ध होकर अपना कार्य भली प्रकार से करने लगती हैं।

(४) **नाभि चालन**– इस क्रिया में दोनों पांवों के पंजे मिलाकर टांगे सीधी रखी जाती हैं और नाभि पर्यन्त इधर, उधर गति दी जाती है। जिससे पांवों की स्थिति दोनों पंजे एक दूसरे के समानान्तर सटे हुये और दांये पैर की सबसे छोटी उंगली दांई तरफ और बांये पैर की सबसे छोटी उंगली बांई तरफ जमीन को स्पर्श करनी चाहिए। छाती और कन्धे व सिर अपनी जगह स्थिर रहने चाहिए। प्रारम्भ में कन्धे एवं छाती थोड़े हिलते रहे तो कोई बात नहीं। इससे पांवों के जोड़ कूल्हे के जोड़ों की चर्बी कम होती है अमाशय छोटी बड़ी आंते, जिगर तिल्ली, पेन्क्रियास, गुर्दे, रीढ़ की हड्डी आदि के रोग मुख्यतः दूर होते हैं इससे अतिशय भूख बढ़ जाती है। खाया पिया तुरंत पचकर रस बन कर आगे की प्रक्रिया में तेजी से बदलता जाता है जिससे अति मात्रा में किया गया भोजन भी तुरंत पचकर ओज का निर्माण करता है। शरीर में अत्यधिक बल की वृद्धि होती है। शरीर ब्रह्मचारियों जैसा ओजस्वी दिखाई देने लगता है।

(५) **जानु प्रसार**– इस क्रिया को नाभिचालन के पश्चात अवश्य कर लेना चाहिए। क्योंकि यदि पेट की कोई नाड़ी यदि अपने स्थान से हट गई हो तो वह अपने स्थान पर आ जाती है। और हटा हुआ नाभिचक्र तुरंत अपने स्थान पर आ जाता है। इसमें एक पांव सीधा करके दूसरे घुटने पर रखकर खड़ी अवस्था में करके श्वांस बाहर निकाल कर फिर घुटने को जमीन की तरफ झुकाते हैं। श्वांस को भरते हुये। दूसरे पैर से भी इसी प्रकार करना चाहिये।

(६) **बाल मचलन**– इस क्रिया में जैसे बच्चा रोता है ठीक उसी प्रकार से किया जाता है। दांया पैर और दांया हाथ जमीन से उठाकर आधा घुटना एवं हाथ मोड़कर दूसरा हाथ एवं पैर सीधा रखते हैं और जमीन से थोड़ा गर्दन एवं पैर उठाकर रखने चाहिये। दूसरी ओर

से भी ठीक इसी प्रकार से करना चाहिये। इस क्रिया को करने से सारे शरीर का खून का दौरा तेज हो जाता है चुस्ती फुर्ती बढ़ जाती है। सिर से लेकर पैर तक का व्यायाम हो जाता है। शरीर पर जो अनावश्यक चर्बी होती है, वह छंट जाती है मन हमेशा बालक की तरह हल्का एवं प्रसन्न रहने लगता है।

(७) **बाल ध्यान**– इस क्रिया में सीधे शव आसन में लेटकर दोनों हाथों और पैरों में स्थान देकर खोल दें फिर सारी चेतना को सभी अंगों से खींचकर आज्ञा चक्र में स्थापित श्री गुणपीठ में बिराजमान गुरुदेव या बाल कृष्ण का ध्यान करना चाहिए। इससे सारा शरीर तनाव रहित हो जाता है। जैसे एक बालक सभी शोक चिन्ताओं से मुक्त रहता है। साधक भी टेन्शन फ्री होकर मस्तिष्क को तरोताजा रख सकता है। जो आज के युग में टेन्शन, हाई ब्लड प्रेशर, लो ब्लड प्रेशर, व अनावश्यक दवाब से मुक्त होकर मन प्रसन्न बना रहता है।

(८) **नाड़ी संचालन**– इस क्रिया में बैठकर दोनों पांवों में एक सवा मीटर की दूरी देकर जितना खोल सकते हैं खोल लें और दोनों हाथों को ऊपर करके श्वांस पेट से बाहर निकाल दें और थोड़ा आगे झुककर दांये हाथ से बांये पैर के अंगूठे को छूना है और बांये हाथ को सीधा करके कमर के पीछे ले जायें दूसरी बार ठीक इसके विपरीत क्रिया करनी होगी यानी बांये हाथ से दायें पैर के अंगूठे को छूना है। इस क्रिया में सिर से लेकर पैर तक पूरे शरीर का व्यायाम हो जाता है। बढ़ा हुआ पेट कुछ ही समय में कम हो जाता है और कूल्हे की चर्बी भी कम हो जाती है। रीढ़ की हड्डी में से जितनी भी नस नाड़िया होकर जाती हैं, उन सबका सही संचालन होकर रक्त प्रवाह बढ़ जाता है जिससे पूरे शरीर में क्रिया शीलता बढ़ जाती है। इससे समस्त शरीर के दर्द दूर हो जाते हैं। चुस्ती स्फूर्ती बढ़ जाती है। शरीर में विद्यमान ७२००० नाड़ियां इससे शोधित होकर अपना कार्य भली प्रकार से करने लग जाती हैं।

(९) **उत्प्रेक्षण**– इस क्रिया में खड़े होकर दांया हाथ और पैर मोड़कर हाथ को कान तक ले जाते हैं और घुटने को मोड़कर समानान्तर लाकर एक जोर का झटका देते हैं इसमें भूमि से पैर को नहीं टकराना चाहिये। दूसरी ओर से भी ठीक इसी प्रकार से करना है। इससे शरीर में अस्त व्यस्त हुई कोई भी नस नाड़ी अपने स्थान पर आ जाती है। और मांसपेशियों के दर्द में भी लाभ मिलता है। जिससे चुस्ती स्फूर्ती बढ़ जाती है।

उपरोक्त लेख में हमने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि आनन्दकन्द श्री रामलाल महाप्रभु जी ने यौगिक चिकित्सा में तो महत्वपूर्ण योगदान दिया ही दिया है जिसको यौगिक जगत कभी भी विस्मृत नही कर सकता है। साथ ही हमने ऐसा शोधपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किया है कि औषधीय क्षेत्र में आज एन्टीबायोटिक औषधि का जो तरीका है सन १९३६ में उसका आविष्कार पेनीसीलीन के रूप में हुआ था परन्तु आनन्दकन्द श्री रामलाल महाप्रभुजी सन् १९२० के पश्चात् से ही इलाज का वह तरीका लाइलाज तपेदिक व अन्य लाइलाज रोगों

पर प्रयोग कर रहे थे और जीवन से निराश रोगियों को नव जीवन प्रदान कर रहे थे। इसलिये गर्व से हम कह सकते हैं कि एन्टीबायोटिक औषधि से इलाज का जो तरीका बहुत बाद में मैडिकल साइंस को प्राप्त हुआ उसका प्रयोग आनन्दकन्द योगीश्वर श्रीरामलाल जी द्वारा फल तत्व साधनों से फलों में रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित करके रोगी को खिलाकर निवारण करते थे और श्री महाप्रभु जी इसका प्रयोग बहुत पहले से सन् १६२० से ही कर रहे थे।

* * *

भजन

सोनिया गोयल, सहारनपुर

परवर दिगार आया, बनके गुरु हमारा।
करने को पार आया ,बनके गुरु हमारा।
परवर दिगार आया.............

सुनने व्यथा हमारी, बनके मसीहा आया,
कर शक्तिपात भारी, बस प्यार ही लुटाया।
अमृत की धार लाया बन के गुरु हमारा
परवर दिगार आया................

कुदरत का है रचैया, गुरु रूप में हमारा
करुणानिधि ने ऐसा, भोला सा रूप धारा,
देने दीदार आया बनके गुरु हमारा
परवर दिगार आया..........

बिन नौका ही तैरा दे, मेरा मांझी है अनोखा,
ना छोड़ो इसका दामन, अब पाके ऐसा मौका।
हरने को भार आया बनके गुरु हमारा
परवर दिगार आया......

हमें देने योग दीक्षा, मालिक है जग का आया,
ये धोती कुर्ता धारे, परमात्मा ये आया।
देने दुलार आया बनके गुरु हमारा।
परवर दिगार आया ....

"महाशक्ति कुण्डलिनी स्तवः"

मोती लाल अध्यापक, कासगंज (एटा)

हमारे शरीर में ७२ हजार नाड़ियां है, जिनमें १४ प्रमुख हैं–सुषुम्ना, इडा, पिंगला, हस्त, जिह्वा, कुहू, सरस्वती, पूषा, शंखिनी, पयस्विनी, वरुणा, अलम्बुषा, विश्वोदरी तथा यशस्विनी। इनमें से भी सुषुम्ना नाड़ी को विशेष महत्वपूर्ण माना गया है क्योंकि सुषुम्ना नाड़ी मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचती है। इसी के मुख द्वारा में कुण्डलिनी नाड़ी साढ़े तीन लपेटे लगाकर बैठी हुई है। इस कुण्डलिनी महाशक्ति को ही योगीलोग समर्थ गुरुकृपा से कुछ विशिष्ट उपायों द्वारा जाग्रत करके ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त करके देवत्व को प्राप्त करते हैं। इसी महाशक्ति की उपासना के अन्तर्गत निम्नलिखित **"कुण्डलिनी स्तवः"** का पाठ भी श्री गुरुदेव जी की अनुकम्पा से लाभ प्रद माना गया है।

जन्मोद्धार निरीक्षणीय तरुणी वेदादिबीजादिमा,
नित्यं चेतसि भाव्यते भुविकदा सद्वाक्य संचारिणीम्।
माम पातु प्रियदास भावकपदं संघातये श्रीधरा:
धात्रि! त्वं स्वयमादि देववनिता दीनाति दीनम् पशुम्।।१।।

रक्ताभामृत चन्द्रिकालिपि मयी सर्पाकृतिर्निद्रिता,
जाग्रत कूर्म समाश्रिता भगवति त्वं माम् समालोकय।
मांसोद्गन्धकुगन्ध दोषजड़ितं वेदादिकार्यान्वितम्,
स्वल्पस्वामल चन्द्रकोटि किरणैर्नित्यम् शरीरं कुरु।।२।।

सिद्धार्थी निज दोषवित्स्थलगतिर्व्याजीयते विद्यया:
कुण्डल्या कुलमार्ग मुक्त नगरी माया कुमार्गः श्रियाः।
यद्येवं भजति प्रभात समये मध्याह्नकालेऽथवा,
नित्यम् यः कुलकुण्डली जपपदाम्भोजं सः सिद्धो भवेत।।३।।

वाय्वाकाशचतुर्दलेऽपि विमले वाञ्छाफलोन्मूलके,
नित्यं सम्प्रति नित्य देहघटितासांकेतिता भाविता।
विद्या कुण्डलिमानिनी स्वजननी माया क्रिया भाव्यते,
यैस्तैः सिद्धकुलोद्भवैः प्रणतिभिः सत्स्तोत्रकैः शम्भुविः।।४।।

धाता शंकर मोहिनी त्रिभुवनच्छायापटोद्गामिनी,
संसारादिमहासुख प्रहरणी तत्र स्थितांयोगिनी,

सर्वग्रन्थिविभेदिनी स्वभुजगा सूक्ष्मातिसूक्ष्मापराम्,
ब्रह्मज्ञान विनोदिनी कुल कुटी व्याघातिनीमाव्यते।।५।।

वन्दे श्री कुलकुण्डलीत्रिवल्लिभिः सांगैः स्वयंभूप्रियाम्,
पाविष्टाम्बरमार चित्त चपलां बालाबलानिष्कलाम्।
सा देवी परिभातिवेदवदना सम्भाविनी तापिनी,
इष्टानांशिरसिस्वयं भुवनितां सम्भावयाभिक्रियाम्।।६।।

वाणी कोटिमृदंगनादमदनानि श्रेणिकोटि ध्वनि,
प्राणेशीरसराशिमूल कमलोल्लासैक पूर्णानना।
आषाढ़ोम्दवमेघराशिजनिताध्वान्तानना स्थायिनी।
माता सा परिपातुसुक्ष्मपथगामाम् योगिनां शंकरी।।७।।

त्वामाश्रित्य नराव्रजन्ति सहसा वैकुण्ठकैलासयोः,
आनन्दैकविलासिनीम् शशिशतानन्दाननांकारणाम्।
मातः श्रीकुलकुण्डली प्रियकले! कालीकलोददीपने।
तत्स्थानं प्रणमामिभद्रवनि ते ! मामुद्धरंत्वंपशुम्।।८।।

कुण्डलीशक्तिमार्गस्थः स्तोत्राष्टक महाफलम्।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स योगी भवति ध्रुवम्।।९।।

क्षणादेवहिपाठेन कविनाथो भवेदिह।
पवित्रः कुण्डलीयोगी ब्रह्मलीनो भवेन्महान्।।१०।।

इति ते कथितंनाथं ! कुण्डलीकोमलम् स्तवम्।
एतत् स्तोत्र प्रसादेन देवेशुगुरुगीष्पतिः।।११।।

सर्वे देवाः सिद्धियुताः अस्याः स्तोत्र प्रसादतः।
द्विपरार्धं चिरंजीवी ब्रह्मासर्वसुरेश्वरः।।१२।।

जो प्रातः उठकर महाफलप्रद शक्ति मार्ग स्थित कुण्डलिनी के स्तोत्राष्टक का पाठ करता है वह गुरुदेव की कृपा से ध्रुवयोगी होता है तथा सभी देवताओं की कृपा का पात्र बनता है।

* * *

अभ्यास और वैराग्य

प्रेषक–जनक कुलश्रेष्ठ (ग्वालियर)

श्रीमद्भगवत गीता में अर्जुन के द्वारा मन की चंचलता के विषय में कहे जाने पर उसकी पुष्टि करते हुए भगवान श्रीकृष्ण जी ने मन को वश में करने के लिए अभ्यास और वैराग्य का होना एकमात्र उपाय बताया था।

जिस प्रकार पक्षी का आकाश में उड़ना उसके दोनों पक्षों (पंखों) के अधीन होता है न कि एक ही पक्ष के। इसी प्रकार मन की समस्त वृत्तियों का निरोध न केवल अभ्यास से ही और न केवल वैराग्य से ही हो सकता है, किन्तु उसके लिए अभ्यास और वैराग्य दोनों का ही होना आवश्यक है।

तमोगुण की अधिकता से चित्त में लय रूप निद्रा, आलस्य, निरुत्साह आदि मूढ़ावस्था का दोष उत्पन्न होता है। और रजोगुण की अधिकता से चित्त में चंचलता रूप विक्षेप दोष उत्पन्न होता है। अभ्यास से तमोगुण की निवृत्ति होती है और वैराग्य से रजोगुण की निवृत्ति होती है।

चित्त एक नदी है, जिसमें वृत्तियों का प्रवाह बहता रहता है इसकी दो धारायें हैं। एक धारा संसार–सागर की ओर बहती है। संसारी लोगों की यह धारा तो जन्म से ही खुली रहती है। दूसरी धारा परम लक्ष्य की ओर बहती है। इस धारा को जो बन्द रहती है, उसे शास्त्र, गुरु तथा ईश्वर चिन्तन खोलते हैं।

पहली धारा को बन्द करने के लिए वैराग्य की आवश्यकता होती है और अभ्यास के बेलचे से दूसरी धारा का मार्ग गहरा खोदकर वृत्तियों के समस्त प्रवाह को विवेक–श्रोत में डाल दिया जाता है। तब प्रबल वेग से वह सारा प्रवाह कल्याण रूपी सागर में जाकर लीन हो जाता है।

इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य दोनों ही एक साथ मिलकर चित्त की वृत्तियों के निरोध के साधन हैं।

योग के आठ अंगों में से यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार की सिद्धि में अभ्यास अधिक सहायक होता है। धारणा, ध्यान और समाधि में वैराग्य सहायक सिद्ध होता है।

अभ्यास–

तत्र स्थितौ यत्नो अभ्यास १/१३ (यो. द.)

चित्त को वृत्ति रहित करने के लिये उत्साहपूर्वक यत्न करना अभ्यास कहलाता है। अभ्यास के बल से ही सरकस में मनुष्य ही नहीं, अपितु हिंसक पशु भी अपनी प्रकृति के विरुद्ध आश्चर्यजनक कार्य करते हुए देखे गये हैं।

स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारासेवितो दृढभूमि। १/१४ (यो. द.)

इस सूत्र में अभ्यास के लिए तीन बातों पर बल दिया गया है।

(१) **दीर्घकाल**—वासना के संस्कार मनुष्य के चित्त पर अनेक जन्मों से पड़े हुए हैं। उनको नष्ट करने के लिए साधारण अभ्यास की अपेक्षा दीर्घकाल तक करते रहना चाहिए। दीर्घकाल से दस बीस वर्षों का तात्पर्य नहीं है, क्योंकि योग के अधिकारी भिन्न–भिन्न प्रकार के होते हैं। जिन्होंने पूर्व जन्मों में अभ्यास के संस्कारों को दृढ़ कर लिया है तथा जिनका वैराग्य भी तीव्र है उनको अति शीघ्र समाधि लाभ हो जाता है। जिनको पूर्व जन्म के संस्कार नहीं हैं तथा इसी जन्म में अभ्यास करना आरम्भ किया है, उन्हें शीघ्र समाधि लाभ नहीं होता है। इस श्रेणी के साधकों को निराश नहीं होना चाहिए, किन्तु धैर्य के साथ चिरकाल तक अभ्यास करते रहना चाहिए।

(२) दूसरा **विशेषण नैरन्तर्य** है। अर्थात् अभ्यास को निरन्तर व्यवधान रहित करते रहना चाहिए। ऐसा न हो कि एक मास कर लिया फिर चार दिन के लिए छोड़ दिया। इस प्रकार का किया हुआ अभ्यास कभी सिद्ध नहीं होता है।

(३) तीसरा **विशेषण सत्कार सेविता** है। अर्थात् वह अभ्यास ठीक समय पर श्रद्धा और भक्ति के साथ उत्साहपूर्वक करते रहना चाहिए। अतः अभ्यासीजनों को थोड़े ही समय में घबड़ाना नहीं चाहिए अपितु दीर्घकाल तक निरन्तर तथा श्रद्धा के साथ जीवन भर करते रहना चाहिए।

वैराग्य-

किसी विषय के त्याग का नाम वैराग्य नहीं है, क्योंकि रोग आदि के कारण भी विषयों में अरुचि हो हो जाती है। जिसमें विषय वस्तु का त्याग करना पड़ता है। लोभ, भय आदि के वशीभूत होकर अथवा दूसरों के आग्रह से भी किसी विषय को त्यागा जा सकता है; किन्तु उसकी तृष्णा सूक्ष्मरूप से मन में बनी रहती है।

दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्। १/१५(यो.द.)

अर्थात् देखे हुए और सुने हुए विषयों से जिसकी तृष्णा नहीं रही है उसको वशीकार वैराग्य अथवा अपर वैराग्य कहते हैं। साधक विषयों से तो विरक्त हो जाता है, परन्तु गुणों से विरक्त नहीं हो पाता है। इसलिए यह पूर्ण वैराग्य नहीं कहा जा सकता है।

वैराग्य की चार संज्ञाएँ (नाम) है–

(१) **यतमान वैराग्य**—चित्त के राग द्वेष आदि दोषों को बार–बार चिंतन करना जिससे चित्त साधक को उन विषयों की ओर प्रवृत्त न कर सके।

(२) **व्यतिरेक वैराग्य**—दोषों को चिंतन करते–करते यह विचार करना कि इतने दोष निवृत्त हो गए हैं और अब इतने दोष निवृत्त होने को शेष है। इस प्रकार पृथक–पृथक रूप से दोषों का शांत हो जाना ही व्यतिरेक वैराग्य है।

(३) **एकेन्द्रिक वैराग्य**—उपरोक्त दोष से बाह्य रूप से तो निवृत्त हो गए हैं, किन्तु सूक्ष्म रूप से मन में बने रहें जिससे विषयों की उपस्थिति से मन में क्षोभ उत्पन्न न कर सके तब वह एकेन्द्रिक वैराग्य कहलाता है। इसलिए विषयों का चिंतन सूक्ष्म रूप से भी मन में नहीं

रहना चाहिए।

(४) **वशीकार वैराग्य**–(अपर वैराग्य)

दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्। १/१५ (यो. द.)

अर्थात् विषय दो प्रकार के होते हैं (१) दृष्ट (२) अनुश्रविक।

१. दृष्ट विषय वे हैं जो इस लोक में दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, धन, सम्पत्ति, परिवारजन आदि से मिलने वाला आनन्द।

२. अनुश्रविक वे विषय हैं जो वेद और शास्त्रों द्वारा सुने गए हैं। जैसे स्वर्ग, विदेह और प्रकृतिलय का आनन्द।

इन दोनों प्रकार के आनन्द देने वाले विषयों की उपस्थिति में भी जब चित्त में इनके दोषों को देखते हुए किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता है तब वशीकार वैराग्य कहलाता है।

विदेह वे योगी होते हैं जो वितर्कानुगत और विचारानुगत समाधियों को सिद्ध करके शरीर से अध्यास छोड़ देते हैं। उनका देहाभिमान नष्ट हो चुका होता है। इसलिए वे विदेह कहलाते हैं।

प्रकृतिलय वे योगी होते हैं जिन्होंने आनन्दानुगत समाधि में प्रवेश कर लिया है।

उपरोक्त दोनों प्रकार के योगियों का परम तत्व ज्ञान या स्वरूपस्थिति प्राप्त नहीं होती है। इसकी प्राप्ति के लिए उनको फिर से जन्म लेना पड़ता है।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रमितां गेहे योग भ्रष्टोऽभिजायते।। गीता ६/४/

अथवा **योगिनामेव कुवे भवति धमिताम्।**
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम। गीता ६/४२

इस उपरोक्त दोनों प्रकार के योगी पुनः जन्म लेकर अपने पूर्व जन्म के अभ्यास से स्वरूप स्थिति को प्राप्त होते हैं। इन योग भ्रष्ट योगियों को भवप्रत्यय योगी कहते हैं।

(५) पर वैराग्य–

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यस्यम।। १/१६ (यो.द.)

तदुपरान्त योगी अस्मितानुगत समाधि की अंतिम सीढ़ी पर विवेकख्याति को प्राप्त हो जाता है, इस स्थिति में योगी सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण तीनों गुणों से वितृष्ण हो जाता है। यह पर–वैराग्य कहलाता है।

पर-वैराग्य की स्थिति में योगी दिव्य-अदिव्य आदि विषयों से तृष्णा रहित हो जाता है। पर-वैराग्य की स्थिति में योगी जहां तक गुणों का अधिकार है, उन सब में तृष्णा रहित हो जाता है। अपर-वैराग्य में योगी देखे और सुने हुए विषयों में दोष देखकर उनसे विरक्त हो जाता है। पर-वैराग्य में चित्त और पुरुष के भेद का साक्षात्कार होता है। इसी को विवेकख्याति या पुरुषख्याति कहते हैं। इस वैराग्य के उदय होने से योगी धर्ममय समाधि को प्राप्त होकर यह मानता है कि जो प्राप्त करने योग्य था वह प्राप्त हो गया। इसी पर-वैराग्य के निरन्तर अभ्यास से कैवल्य प्राप्त हो जाता है। ❋❋❋

सद्गुरुदेव और परमात्मा की एकरूपता

रचना शर्मा, गंगापुर सिटी (राज०)

भक्ति ही परमात्मा को प्रसन्न करने और उन्हें प्राप्त करने का सुगम साधन है परन्तु सद्गुरु की संगति प्राप्त किए बिना भक्ति हो ही नहीं सकती। परमात्मा की प्राप्ति के लिए परमात्मा की भक्ति आवश्यक है; परन्तु जब तक जीव को सद्गुरु की प्राप्ति नहीं होती तब तक उसके मन में अनेकों प्रश्न उठते हैं कि उस परमात्मा को हमने देखा नहीं और उसके बारे में हमें कुछ ज्ञान नहीं मगर ऐसा कौन सा मार्ग है जिससे परमात्मा के पास पहुँचा जाए? कैसे उनकी भक्ति की जाए? परन्तु जब सद्गुरुदेव से हमारा मिलाप होता है वो हमें परमात्मा का सहज–सुलभ मार्ग बताते हैं तभी हमारे अन्दर का सोया ज्ञान प्रस्फुटित होता है और तभी जीव समझ पाता है कि मनुष्य रूप सन्त सद्गुरु और अनन्त रूप परमात्मा के बीच कोई भेद नहीं होता, स्वयं परमात्मा ही जीवों का उद्धार करने के लिए सद्गुरुदेव के रूप में प्रकट होते हैं। सद्गुरुदेव परमात्मा के प्रकट रूप हैं उन्हीं की भक्ति द्वारा परमात्मा की भक्ति की जा सकती है तथा परमात्मा का वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। गुरु की कृपा से ही भक्ति में पवित्रता और ज्ञान में निर्मलता आती है रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने भी इसी बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है–

"अति सीतल अति ही सुखदाई। सम दम राम भजन अधिकाई।।
जह जीवन कौं कटे सचेता। जग महँ विचरत हैं एहि हेता।।"

देहधारी पूर्ण गुरुदेव परमात्मा का ही रूप होते हैं इसलिए उन देहस्वरूप गुरुदेव द्वारा ही परमात्मा की कृपा और आध्यात्मिक दौलत मनुष्य पर बरसती है और उसके आन्तरिक विकार जलकर भस्म हो जाते हैं तथा उसकी समस्त शंकाओं समस्याओं का समाधान गुरुदेव अपनी कृपा से कर देते हैं। एक मात्र सद्गुरुदेव ही मंत्र रूपी नौका में हमें सवार कर स्वयं उस नाव के खेवनहार बन जाते हैं और हमें सांसारिक तूफानों झंझावातों से बचाते हुए अपने निज घर परमात्मा के धाम तक पहुँचा देते हैं। सद्गुरुदेव ही हमें परमप्रभु परमात्मा से साक्षात्कार करवाते हैं सद्गुरु की करुणा कृपा के बिना अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करना आन्तरिक मार्ग के खतरों पर विजय प्राप्त करना आध्यात्मिक अमृत का पान करना और सुरक्षित रूप से निज घर तक पहुँचना असंभव है. परमप्रभु परमात्मा के दरबार में गुरु भक्त ही सच्ची शोभा पाता है। गुरुदेव की आशीर्वाद रूपी छत्र–छाया जिसके पास नहीं है उसे वहीं रोक दिया जाता है। परमात्मा के महल में केवल एक सच्चा गुरु भक्त ही प्रवेश पर सकता है। उस अविनाशी परमतत्व को वही जानता है जो दूसरों को भी अपनी कृपा से उसके बारे में ज्ञान करवाता है व उस परमतत्व को जान लेता है।

अकारण ही भक्तों पर करुण कृपा बरसाने वाले उन गुरुदेव की महिमा का वर्णन करने में हम उसी प्रकार असमर्थ है जिस प्रकार कोई साग सब्जी बेचने वाला मणियों का मूल्य नही बता सकता। तुलसी दास जी कहते है यदि यह सम्पूर्ण पृथ्वी कागज बन जाए, समुद्र स्याही बन जाए, पेड़ों वनस्पतियों को कलम बना लिया जाए और स्वयं बुद्धि के स्वामी विनायक भी सद्गुरुदेव की महिमा का बखान करें तो परमात्मा रूपी गुरुदेव की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

सद्गुरुदेव अपने भक्तों पर नित–प्रतिदिन अपनी करुण कृपा की बरसात करते हैं जब शिष्य अपना सब कुछ न्यौछावर कर उन गुरुदेव की भक्ति के रंग में रंग जाता है तो वो ही देहधारी हमारे गुरुदेव परमात्मा के रूप में हमारे सामने आते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों लोकों के दर्शन सच्चे सद्गुरुदेव के भक्तों को उन्हीं के रूप में होने लगते है, उन गुरुदेव के पास तो दया–करुणा का भण्डार है, मगर आवश्यकता है तो सिर्फ एक बार हुलसकर व्यग्र होकर अत्यन्त आर्तभाव से उनको पुकारने की। जब एक शिष्य अपने गुरुदेव के पास जाकर अत्यन्त आर्तभाव से प्रेमयुक्त होकर उस दयामयी कृपानिधान से दया की भीख माँगता है तो गुरुदेव स्वयं प्रकट होते हैं और उसे कल्याण के मार्ग पर ले जाते हैं। जिस प्रकार एक बेकार पड़े हुए पत्थर को घिस–घिस कर एक सुंदर हीरे का रूप दिया जाता है उसी प्रकार गुरुदेव अपने कृपा–पात्र शिष्य को साधारण से अलौकिक मनुष्य बना देते है। जब हम अपने अभिमान या आपाभाव को मिटाकर सद्गुरुदेव के चरणों में अपने आपको समर्पित कर देते है तब हमें अपने अंदर सद्गुरुदेव की चरण धूलि प्राप्त होती है। गुरु के चरण कमलों की धूलि का यह प्रभाव है कि इससे सच्ची प्रभु भक्ति प्राप्त होती है जो कल्पवृक्ष या कामधेनु की तरह सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली होती है। यह चरण धूलि मरे हुए को जीवित करने वाली संजीवनी बूटी के समान है जो संसार के काम, क्रोध आदि सभी विकारों का नाश कर देती है यह भक्त के मन रूपी सुन्दर आईने के मैल को दूर करने वाली है और इसे सिर पर चढ़ाने वाला व्यक्ति सभी ऐश्वर्य का स्वामी बन जाता है। अर्थात् ऐश्वर्य की कामना या मोह को जीत लेता है।

रामायण में गुरु के चरण कमलों को "भवसागर महँ नावं" कहा गया है जिसके सहारे जीव सहज ही संसार–सागर को पारकर परमात्मा को प्राप्त कर लेता है और सदा के लिए सांसारिक दुःखों से छुटकारा पा जाता है। सद्गुरुदेव के बताए सुमिरन के अभ्यास से हमारे अंदर सद्गुरुदेव का स्वरूप प्रकट हो जाता है। उस स्वरूप के प्रकाश से हमारे हृदय का अज्ञान रूपी अंधकार दूर हो जाता है और ज्ञान का प्रकाश फैल जाता है। गुरु के चरण के एक नख में अनेक मणियों के समूह का प्रकाश होता है। और यह बड़े भाग्य से हमारे अंदर प्रकट होता है। इसके प्रकट होने से हमारे आंतरिक आँख या दिव्य दृष्टि खुल जाती है और हमें हमारे अंदर अनेकों दिव्य दृश्य दिखाई देने लगते हैं। सद्गुरुदेव के स्वरूप का यह

प्रकाश कभी नष्ट नहीं होता, जब तक हमारा मन विषयों की आस में लगा रहता है तब तक हमारा जन्म–मरण के चक्र से छुटकारा नहीं हो सकता और हम कभी सपने में भी सुख प्राप्त नहीं कर सकते, गुरुदेव के दिव्य स्वरूप का प्रकाश न तो अस्त होता है और न बदलता है। परमात्मा रूपी सद्गुरुदेव के सिवाय कोई दूसरा सत्य नहीं है। यह अजन्मा है, यह सूर्य चन्द्र दीपक आदि के माध्यम से प्रकाशित नहीं हो रहा है बल्कि स्वयं ही प्रकाशमान है इसलिए इस प्रकाश का अनुभव स्थायी होता है।

यद्यपि परमात्मा का निवास हमारे हृदय के अंदर है मगर जिस प्रकार आँखें एक दूसरे के अगल बगल है, फिर भी वे एक–दूसरे को देख नहीं सकती केवल दर्पण के सहारे ही वे एक दूसरे को देख सकती हैं इसी तरह एक दूसरे के निकट होते हुए भी आत्मा और परमात्मा का मिलाप नहीं है। सद्गुरु द्वारा ज्ञान–दर्पण प्राप्त हो जाने पर ही इनका मिलाप होता है। जब तक सद्गुरुदेव से हमारा मिलाप नहीं होता और वे हमें परमात्मा से मिलने का तरीका नहीं समझाते तब तक न तो हम सच्ची भक्ति कर सकते हैं और न ही जन्म मरण से छुटकारा पा सकते हैं। इसलिए परमात्मा के हृदय में रहने पर भी हम दुखी बने रहते हैं। केवल गुरुदेव की कृपा से हमारी भव बंधन से मुक्ति हो सकती है। परमात्मा समुद्र है तो गुरुदेव मेघ, परमात्मा चन्दन का वृक्ष है तो गुरुदेव सुगन्धित हवा, समुद्र के अगाध जल को न तो हम पी सकते हैं और न ही इसे सिंचाई के काम ले सकते हैं। मगर वही समुद्र का जल जब मेघ बनकर बरसता है तो सारी धरती जीव जन्तु तृप्त हो जाते हैं इसी प्रकार चन्दन के वृक्ष की सुगन्ध को हवा ही चारों ओर फैलाकर आस–पास के वृक्षों को चन्दन बनाती है। गुरुदेव रूपी हवा के बिना परमात्मा रूपी चंदन वृक्ष की सुगन्धि किसी जीव रूपी वृक्ष को प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए हमें गुरुदेव को ही परमात्मा का प्रकट रूप मानकर उनसे दृढ़ प्रीति करनी चाहिए और उनसे अत्यंत करुणायुक्त भाव से विनती करनी चाहिए क्योंकि वे ही परमेश्वर हमें इस भवसागर से मुक्ति दिला सकते हैं।

❈ ❈ ❈

सच्चा शिष्य गुरु के किसी बाहरी काम पर लक्ष्य नहीं करता। वह तो केवल गुरु की आज्ञा को ही सिर नवाकर पालन करता है।

"संस्कार शक्ति व साधना शक्ति"

(भाग-१२)

–कु० रुक्मिणी वर्मा (सहारनपुर)

पूर्व भाग में बात मदालसा के पुत्र की चल रही थी कि अलर्क को आत्मज्ञान का पाठ भी माता ने पढ़ाया परन्तु अपने पति की आज्ञानुसार रानी मदालसा ने उसे सभी वर्णो, आश्रमों की दीक्षा भी दी। पिता की आज्ञानुसार अलर्क राज्य करने लगा और रानी मदालसा व उसके पति राजा ऋतुध्वज वन को जप करने चले गये परन्तु रानी ने जाते समय अपने पुत्र को अँगूठी में एक पत्र लिख कर दिया कि इसे तब खोलना जब तुम स्वयं को नितान्त असहाय पाओगे। अलर्क राज करने में इतना मस्त हो गया कि उसकी आसक्ति दिन रात राज्य पालन में व उसकी समृद्धि करने में ही लगी रहने लगी। परन्तु अलर्क के बड़े भाई सुबाहू को यह चिन्ता दिन रात रहने लगी कि हम तीन भाई तो आत्मज्ञानी बन आत्मरमण में आनन्दमग्न रहते हैं परन्तु हमारा चौथा भाई अलर्क तो संसार सागर में ही डूब रहा है, वह तो भोग में ही मग्न है, अतः उसे विरक्ति का पाठ कैसे पढ़ाया जाये ? जब तक उसे कोई जबरदस्त टक्कर नहीं लगेगी तक तक वह आसक्ति में ही मदमस्त रहेगा और फिर उसका पतन निश्चित है। अतः बड़े भाई ने काशी नरेश की सहायता ली। काशी नरेश ने अलर्क को सन्देश भेज दिया कि राज्य बड़े भाई को सौंप दो नहीं तो युद्ध के बल पर तुम्हारा राज्य लेना पड़ेगा। अलर्क को सहन नहीं हुआ कि यदि बड़ा भाई स्वयं आये तो सम्पूर्ण राज्य उसका है परन्तु युद्ध की धमकी से राज्य नहीं दूँगा। बात बढ़ती गयी और युद्ध में काशी नरेश ने अलर्क का सम्पूर्ण राज्य हड़प लिया। जब सब कुछ तहस–नहस हो गया और अलर्क के पास एक सेवक तक न रहा तो अलर्क को माँ मदालसा की याद आयी, उसने माँ द्वारा दी गयी अँगूठी को देखा, उसमें से पत्र निकाल कर पढ़ा। पत्र में आत्मज्ञान का उपदेश था। अलर्क को वास्तविकता का आभास हुआ और वैराग्य हो गया।

काशी नरेश ने सुबाहू को राज्य देने की बात पेश की तो सुबाहू ने कहा कि मुझे राज्य का क्या करना ? यह सब प्रपंच तो मैंने अपने छोटे भाई को वैराग्य पथ पर लाने के लिये किया था। जब तक उसके पास राज्य पुत्र परिवार रहता उसे वैराग्य न होता। अतः उसके राज्य का सर्वनाश करना जरूरी था। अलर्क ने भी बड़े भाई के कृतृत्व को उपकार माना और काशी नरेश को भी सुबाहू से ज्ञान मिला व वैराग्य हो गया। अलर्क ने गुरु दत्तात्रेय जी से योग दीक्षा ली व तप में आरुढ़ हो गया। अगर अलर्क को बचपन में युवावस्था तक

दिव्य शिक्षा न मिलती तो शायद वैराग्य होना मुश्किल था। अतः आकस्मिक घटनायें भी उन्हीं के काम आती हैं, जिन्हें पहले से ही ज्ञान हो, नहीं तो घटना दुर्घटना बन जाया करती है।

विपत्ति अनेकों पर आती है। किसी का घर जलकर राख हो जाता है, किसी का कारखाना चौपट हो जाता है, कोई भूकम्प में सारे परिवार से बिछुड़ जाता है, किसी का बाढ़ में तथा किसी का तूफ़ान में सब कुछ स्वाहा हो जाता है परन्तु कौन वैराग्य पथ पर आता है ? सब पूर्व स्थिति को यथावत् बनाने की जीतोड़ मेहनत करते हैं बल्कि अपनी भौतिक स्थित को पहले से अधिक सुदृढ़ बनाने की कोशिश में दिन–रात एक कर देते हैं परन्तु वैराग्य की एक किरण तक जीवन में नहीं आ पाती। बहुत पुण्यशील जीवात्मा होती है वह, जो सब कुछ तहस–नहस हो जाये और वैराग्य धारण करके भक्ति व तप के पथ पर आरूढ़ हो जाये। सन्त तुकाराम जी अनाज का व्यापार करते थे। १६१६ ई० में भयानक अकाल पड़ा। अकाल पड़ने से पहले उनका पूरा परिवार सुखपूर्वक रहता था। अकाल पड़ने पर उन्हें जबरदस्त भुखमरी का शिकार होना पड़ा। इसी भुखमरी के कारण उनकी पत्नी रुकमा बाई और उनका प्यारा सा पुत्र सन्तू परलोक सिधार गये। दूसरी पत्नी जिजाई गरीबी के कारण तुकाराम जी को सदा झिड़कती, कोसती और अपमान करती। उनके इष्टदेव को भी गालियाँ देती। इस प्रकार तुकाराम अपने घर में भी सहानुभूति से वंचित थे। अधिकाँश प्रभु प्रेमी बालकों के घर में विपरीत मनः स्थिति वाले सदस्य मिलते हैं। तुकाराम जी को व्यापार में भारी घाटा उठाना पड़ा और वे कर्ज से बुरी तरह दब गये। उनके अधिकाँश पशु मर गये। महाजनों ने उन्हें कर्ज की अदायगी के लिये तंग करना शुरू कर दिया और उन्हें सहायता देने वाला भी कोई न रहा। तुकाराम जी ने अपनी इस दुखभरी अवस्था का बहुत मार्मिक शब्दों में वर्णन किया है– "सांसारिक दुखों से मैं दुखी हो गया। मेरे माँ–बाप चल बसे। अकाल पड़ने के कारण मेरा केवल धन ही नष्ट नहीं हुआ अपितु मेरी प्रतिष्ठा भी चली गयी, लोग मेरी बेइज्जती करते थे। पत्नी भी अन्न की रट लगाते हुए मर गयी, बेटा भी भूख के कारण चल बसा। मुझे शर्म आने लगी और मेरा जी दुख से अकुला उठा। मेरा सारा जीवन अस्त–व्यस्त हो गया। मुझे भारी मानसिक आघात पर आघात पहुँचे और मैं पूरी तरह से संसार से उदासीन रहने लगा। मुझे शुरू से ही धर्म व भक्ति की ओर लगाव था। अतः सांसारिक भाग–दौड़ की असारता का मुझे गहरा अहसास होने लगा। मैं लोगों से तंग आ गया और मैं तब दृढ़तापूर्वक परमात्मा की खोज में लग गया। मेरे अन्दर कोई भी कामना न रही और मेरा संसार से मन पूरी तरह उचाट हो गया, मुझे किसी भी प्रकार की कोई इच्छा न रही। मैं एकान्त में समय बिताने के लिए देहू के पास की भामनाथ व भण्डारा की

पहाड़ियों पर जाने लगा। परम सत्य की जानकारी प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा की भावनाओं में मैं घण्टों वहाँ डूबा रहता था। अतः मैं गहन चिन्तन में रहने लगा। संसार के लोगों और पदार्थों से मैं इतना तंग आ चुका था कि किसका आसरा लेकर जीता । मुझे इस सच्चाई का गहरा अहसास होने लगा कि सच्चा और स्थायी सुख केवल परमात्मा ही दे सकता है।" श्री तुकाराम जी कहते हैं कि "मैं बचपन से ही धार्मिक ग्रन्थ–पोथियों की शिक्षा को समझने और उस पर चलने का प्रयत्न करता रहता था। सन्तों की संगति प्राप्त कराने का कोई भी मौका मैं हाथ से नहीं जाने देता था। सन्तों के पास बिना बुलाये भी जाना चाहिये।"

अतः यहाँ भी यही सिद्ध होता है कि विपरीत परिस्थितियाँ पाकर उन्हीं का वैराग्य फलता व विकास पाता है, जिनके हृदय में ज्ञान की हिलोरे पहले से ही हों अथवा ईश्वरीय अनुसन्धान में किसी न किसी रूप में वे लगे रहते हों अथवा पूर्व जन्म का कोई अतुलित पुण्य उदित हो गया हो।

तीरथ राम से स्वामी रामतीर्थ बनने में जो समय लगा वह समय बड़े संघर्ष का था। विकट दरिद्रता के कुल में जन्म लेने के कारण यह संघर्ष और भी भयानक हो गया था। जन्म के कुछ दिन बाद ही इनकी माता चल बसी। माँ का दूध न मिलने के कारण इनकी शारीरिक स्थिति सदैव निर्बल बनी रही। घर की गरीबी के कारण इन्हें पूरा आहार न मिल सका, इसलिये प्रारम्भिक क्षति की पूर्ति आजन्म न हो सकी। तीसरी विपत्ति यह आ पड़ी कि दो वर्ष के भी नहीं हुए थे तो पिता ने इनकी सगाई कर दी। दस वर्ष होने पर पिता ने इनका विवाह कर दिया। ज्योतिषियों की भविष्य वाणी की कि यह बालक अलौकिक बनेगा। बचपन में इन्हें सब राम कहते थे। राम धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ने में बहुत रुचि लेते थे। मन्दिरों में जाकर धर्म कथायें सुनते थे। अपने शिक्षक से उपासना के लिये छुट्टी माँगा करते थे कि जो समय स्कूल में भोजन की छुट्टी का होगा वह समय कम कर देना तथा उस समय मैं पाठ याद कर लिया करूँगा। आर्थिक स्थिति खराब थी और माध्यमिक शिक्षा की फीस भी काफी लगती थी। परन्तु कठोर परिश्रम करके ऊँची शिक्षा के लिये ये कृत संकल्प थे। गुजरों वाला में इनकी भेंट 'धन्ना भगत' से हो गयी। उनसे इनका घनिष्ट सम्बन्ध हो गया। इनके अध्ययन में इनके मामा रघुनाथ व योगी धन्ना भगत ने बहुत सहायता की। इनके पिता ने इन्हें एक रुपया भी देना बन्द कर दिया और लाहौर में अपनी पत्नी को साथ रखने को कह गये। एक बार तीर्थराम फेल हो गये और वजीफा भी टूट गया। दो बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर राम अपनी पढ़ाई का खर्च चलाते परन्तु लोगों ने उनकी ट्यूशन भी हटवा दी। इन्होंने दोबारा B.A. संस्कृत की और प्रान्त में प्रथम आये। पत्नी का भी इन्हें कोई न कोई

प्रबन्ध करना था। प्रथम आने पर इन्हें ६० रुपये मासिक वजीफा मिला। गणित में M.A. करते समय केवल दूध पर जीवन निर्वाह किया। एक बार दूध पीने बाजार गये तो पाँव की जूती नाली में जा गिरी, बहुत खोजी परन्तु मिली नहीं। अगले दिन एक पाँव अपनी जूती व दूसरे पाँव में जनानी जूती पहनकर कालेज गये। सवा नौ आने का कई दिन बाद नया जोड़ा जूते का खरीदा। नयी जूती खरीदने का कारण भी उन लोगों को लिखना पड़ता था। जहाँ से इन्हें पैसों की मदद मिलती थी। ईश्वर ने प्रार्थना सुनी। एक बार स्यालकोट में किसी स्कूल मास्टर का काम अपने हाथ में लेकर गये और सैकिण्ड मास्टर के पद पर इन्हीं की नियुक्ति हो गयी। नियुक्ति का कारण भी यह बन पड़ा कि छात्रावास के मुसलमान निरीक्षक ने छात्रावास के भवन में गोमांस पकवा दिया। इस बात से हिन्दू विद्यार्थियों के हृदय पर चोट पहुँचना स्वाभाविक था। उस मास्टर को उसके पद से हटा दिया गया और राम को नियुक्त किया गया। बाद में ये लाहौर के कालेज में गणित के मुख्य प्रोफेसर हो गये। परन्तु सारा दिन व्यस्त रहने के कारण ईशचिन्तन में समय कम मिलता था। इन्होंने प्रोफेसरी छोड दी। परन्तु पेट भरने के लिये तो कुछ साधन चाहिये। खाली पेट साधना कैसे हो ? कुछ दिन बाद ओरियन्टल कालेज में रीडरशिप का कार्य मिल गया। जिसमें केवल दो घन्टे प्रतिदिन काम करना पड़ता था। अतः जीविका भी चलती रही और साधना भी। बाद में ये लाहौर छोड़कर सदा के लिये हिमालय के अरण्यों में चले गये। यही राम बाद में स्वामी रामतीर्थ के नाम से विश्व–विख्यात हुए और जापान तथा अमेरिका आदि स्थानों पर जाकर भारतीय धर्म का प्रचार किया। विदेश जाने के लिये इन्होंने न पैसा जमा किया न किसी से सहायता माँगी परन्तु ईश्वर ने कदम–कदम पर किसी न किसी शरीर में प्रकट होकर इन्हें सहायता दी। अगर स्वामी राम के अन्दर शुद्ध भाव, विद्या का ज्ञान व सच्ची लगन न होती तो पग–पग पर मदद न मिलती। अतः विपत्ति भी इनके लिये वैराग्य बढ़ाने में सहायक रही। इन्हें कदम–कदम पर बढ़ती मुसीबतों ने जगत की असारता का कटु आभास कराया। संसार से उदासीन होकर ये ईश चिन्तन में डूबते चले गये और ईश्वर ने धीरे–धीरे इनकी सर्विस से भी इन्हें मुक्ति दिला दी।

तरुण अवस्था में स्वामी विवेकानन्द जी को भी बहुत पापड़ बेलने पडे। कुछ समय तक इनकी साधना भी अस्त–व्यस्त रही। घर की मुसीबतें इस प्रकार सिर पर हावी हो गयी कि बहुत अनमने से रहने लगे। पिता विश्वनाथ दत्त ने तो राजसी ठाठबाट से पाला परन्तु पिता का धन अधिकतर नौकर चाकर, गाड़ी–घोडा आदि पार्थिव सुखों में व्यय होता था। अभी नरेन्द्र की पढ़ाई पूरी भी नहीं हुई थी कि पिता की मृत्यु हृदय गति के कारण हो गयी। खबर सुनते ही नरेन्द्र को चारों तरफ अन्धकार ही अन्धकार नजर आने लगा। धन तो पिता यथेष्ट

कमाते थे परन्तु मुक्त हस्त होने के कारण कुछ बचा नहीं पाते थे। कहाँ तो नरेन्द्र विद्या में कठोर परिश्रमी होने के कारण, तर्क बुद्धि में निपुण होने के कारण, दर्शनशास्त्र के अतिउत्तम छात्र होने के कारण सबको अतिप्रिय लगते थे तथा हर समय नरेन्द्र मुस्कराते थे और कहाँ सांसारिक दुखों में घिरकर उदासीन व कठोर आघात से चौंक उठे। प्रचुरता में पले भाई–बहिनों को रोटी के लिये तरसते देख वे विचलित हो गये। सम्पत्ति के समय जो मित्र थे, विपत्ति के समय किनारा काट गये। नरेन्द्र को मित्रों की ओर से गहरा आघात पहुँचा। समझ तो सब कुछ गये परन्तु अब निर्धनता की पीड़ा किसी से न कहते थे। कानून की परीक्षा की तैयारी भी करते रहे परन्तु काम की खोज में तीन महीने बीत गये। अन्न के अभाव में किसी–किसी दिन घरवालों सहित आहार भी प्राप्त न हुआ। थोड़ा–थोड़ा खाकर उपवास जैसा जीवन बिताने लगे। कई लोग इनके बौद्धिक प्रभाव से प्रभावित होकर अपने घर भोजन के लिये निमन्त्रण भी देते थे परन्तु ये स्वीकारते नहीं थे क्योंकि घर में भाई–बहिन भूखे रहे और ये पेट भर खायें। अतः निमन्त्रण पर न जाते थे। कलकत्ते के राजपथों पर दिन –रात नौकरी के लिये भटकते रहे। संसार की कृतघ्नता का वीभत्स दृश्य देखकर इनका चित्त द्रोही हो गया। नंगे सिर, नंगे पाँव नरेन्द्र काम की तलाश में दोपहर की धूप में मारे–मारे फिरते।

दुख को बढ़ाने के लिए नयी विपत्ति एक और आ गयी।खानदान के ही किसी व्यक्ति ने उन्हें घर से बाहर कर देने के लिये मुकदमा चला दिया। मुकदमें के लिये कहाँ से पैसा आये ? भगवान का नाम लेते हुए शैय्या से उठ रहे थे तो माँ ने कहा– "चुप कर रे ! बचपन से ही भगवान, भगवान की रट लगाये रखता है। भगवान ने ही तो सिर पर ये विपत्तियाँ दे मारी।" नरेन्द्र की चीत्कार प्रचण्ड रूप से जाग पड़ी –"क्या सचमुच भगवान दरिद्रों का कातर क्रन्दन नही सुनते या सुनना नहीं चाहते ? क्या वह यह निष्ठुर दानवी कृत्य हाथ समेट कर देख रहे हैं ? जो भगवान इस लोक में क्षुधार्तों को एक टुकड़ा रोटी देकर जीवन रक्षा नहीं कर सकते क्या वे अन्त में अक्षय सुख का अधिकारी बनायेंगे ? तो क्या ईश्वर कुछ नहीं है ? नहीं! वह सब कुछ है। परन्तु दुखी के क्रन्दन से उसका हृदय क्यूँ नहीं पिघलता ? हृदयहीन है क्या ? नरेन्द्र की मूर्ति पूजा में जरा भी निष्ठा न थी। ब्रह्मसमाज में सम्मिलित होकर निराकार में ही अधिक रुचि थी। दिन प्रतिदिन बीतने लगे। नरेन्द्र चिन्ता में घुलते जा रहे थे। सुन्दर खिलखिलाता चेहरा कुम्हला गया, परिश्रम करते परन्तु सुधार नहीं हुआ। नरेन्द्र गमगीन से होकर सोचने लगे कि मेरे जीवन का उद्देश्य तो इन सब झमेलों से महान है। अतः अन्तरंग रूप से संसार छोड़ने की तैयारी करने लगे।

(क्रमशः)

महात्मा अमीरानन्द (भाग-२)

लेखक–राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

२५ जून १९९० को परम धन श्री गुरुदेव जी का शरीर शांत होने से पूर्व ऋषिकेश में गंगा दशहरा का प्रोग्राम करके गुरुदेव जी को सहरानपुर प्रोग्राम में जाना था। ये पूज्य गुरुदेव भगवान की पावन जीवन लीला के अन्तिम दिन थे। हो सकता है प्रोग्राम के बहाने भाई अमीरानन्द जी की अन्तिम दर्शन की गुरुदेव के हृदय में कुछ भावना बनी हो। सहारनपुर पहुँचने की गुरुदेव की पूरी तैयारी थी। जिस दिन गुरुदेव भगवान को सहारनपुर पहुँचना था उसी दिन भाई अमीरानन्द जी को किसी के घर पर यज्ञ करने के लिए जाना था। उन्होंने आश्रम के ही सदस्य नरेश को १०० रु. देकर कहा मेरी तरफ से गुरुजी को भेंट कर देना। भाई अमीरानन्द जी का मन बड़ी दुविधा में पड़ गया था एक ही दिन में दोनों महत्त्वपूर्ण कार्य पड़ गये थे। मन में गुरुजी के दर्शनों की अभिलाषा तो थी किन्तु यज्ञ करने के लिए मन बन चुका था। वहाँ वचन देने के कारण जाना जरूरी हो गया था।

श्रद्धा से जब कोई खींचता है,
तभी प्रभु खिंच के आते हैं।

यज्ञ करके जब भाई जी वापस आश्रम लौटे तो उन्हें पता चला कि गुरुजी तो ऋषिकेश से ही दिल्ली चले गये हैं। यह सुनकर भाई जी के मन को बड़ा धक्का लगा। उन्हें गुरुदेव जी की बहुत याद आती रही। उन्हें लग रहा था जैसे उनका प्राण उनसे अलग होकर कहीं दूर चला गया हो। रातभर गुरुचिन्तन में पड़े रहे। गुरुजी के प्रत्येक वचन को स्मरण किया। अपनी भूलों के प्रति गहरा पश्चाताप भी मन में समाया हुआ था। भाई अमीरानन्द जी की अब जीने की इच्छा नहीं थी, उम्र भी काफी हो चुकी थी। वे मन ही मन अपने शरीर को त्यागने का संकल्प बना रहे थे। भाई अमीरानन्द जी की मानसिक वेदना का अनुभव पूज्य गुरुदेव भगवान ने दिल्ली में कर लिया था। अन्तर्यामी प्रभु से क्या छिपा था ? अपने बच्चे के लिए गुरुदेव से बढ़कर कोई सहायक नहीं। गुरुदेव नहीं चाहते थे कि अमीरानन्द अभी अपना शरीर पूरा करे। गुरुदेव तो सदा अपने बच्चों के लिए ऐसा उत्कृष्ट रास्ता खोजते हैं जिसमें उनको अधिकतम कल्याण की प्राप्ति हो। महात्मा जी की साधना में शिथिलता तो आ ही गई थी। पहले जैसी तीव्रतम लगन साधना में नहीं बन पा रही थी। अत्यधिक क्रोध के परिणाम स्वरूप शारीरिक व मानसिक शक्ति क्षीण होने से चित्त को आलस्य–प्रमाद घेरने लगा था। शरीर छोड़ने का उनका जो संकल्प बना वह यही सोचकर बना कि अब इस शरीर से कोई लाभ नहीं, नये शरीर में ही अब योग शुरू करेंगे।

जिस दिन गुरुदेव भगवान का पावन शरीर शान्त हुआ उसके दो दिन पूर्व गुरुदेवजी ने भाई अमीरानन्द जी को स्वप्न में दर्शन दिये और कहा– "अमीरानन्द अभी तुम कुछ दिन और बने रहो, मैं भी अभी कुछ दिन और रहूँगा।"

इस घटना के बाद अमीरानन्द जी का शरीर वर्ष १९६७–६८ के आस–पास पूरा हुआ है। १९६० में गुरुदेव ने केवल अपने स्थूल शरीर का ही परित्याग किया था। १९६८ तक गुरुदेव सूक्ष्मशरीर से आश्रम में रहे। फिर गुरुदेव व महात्मा अमीरानन्द जी ने एक ही समय (वर्ष १९६७–६८) दोनों संसार से पलायन किया। वर्ष १९६७–६८ में ही एक ब्रह्मचारी गर्मियों के दिनों में गुफा के सामने दरबार में सो रहे थे। गुरुदेव जी ने उनसे स्वप्न में कहा–"लल्ला! अभी तक मैं यहीं था, अब मैं जा रहा हूँ। अब जो करेगा सो पायेगा। श्री प्रभु जी यहाँ हमेशा विराजमान रहते हैं अब वही तुम्हें सम्भालेंगे।

एक बार प० रामाश्रये दादाजी, गुरुदेव जी से आज्ञा लेकर आगरा में एक महात्मा जी का दर्शन करने गये थे। उन्होंने महात्मा जी से पूछा कि हमारे गुरुदेव हमें अभी छोडकर तो नहीं जायेंगे ? महात्मा जी ने कहा–अरे चिन्ता मत करो, खूब गुरुदेव की सेवा करो। तुम बड़े धन्य हो। अभी तुम्हारे गुरुदेव नहीं जायेंगे। वर्ष १९६७–६८ में तुम्हारे गुरुदेव जायेंगे।

गुरुदेव जी जब अपने बच्चों को आज्ञा देकर किसी महात्मा के पास भेजते थे तो उनसे पूछते थे कि तुमने महात्मा जी क्या पूछा और उन्होंने क्या उत्तर दिया। दादाजी जब लौट कर गुरुचरणों में आये तो गुरुदेव ने पूछा– "लल्ला! महात्मा ने ठीक कहा मैं ६८ में ही जाऊँगा।" हमने कई बार रामाश्रये दादाजी को गुरुजी की याद करते देखा। आँखों में आँसू भरकर कहते थे ये क्या हो गया उस महात्मा की बात झूठी कैसे हो गयी ? गुरुजी को अठ्ठान्वे में जाना था इतनी जल्दी कैसे चले गये ? उक्त घटनाओं से महात्मा अमीरानन्द जी का स्वप्नानुभव सत्य प्रतीत होता है। यह कह पाना कठिन है कि गुरुदेव जी ने समय से पूर्व अपनी स्थूल देह का परित्याग क्यों किया? योगियों की लीलाओं को समझ पाना कठिन है किन्तु यह तो निश्चित है कि वह जो कुछ भी करते हैं अपने बच्चों के कल्याणार्थ करते हैं। मैंने एक पुस्तक में एक योगी का अनुभव पढ़ा था। उनके अनुसार– जब शिष्य गुरु की आज्ञा नहीं मानते मनमुखता से चलने लगते हैं। अपने मन के अनुसार काम करने की गुरुदेव जी से भी हठ करने लगते हैं अर्थात् शिष्य जब परमदयालु करुणार्णव गुरुदेव के असीम प्रेम का दुरुपयोग करने लगते हैं तो गुरुदेव उनके कल्याणार्थ अपने समय से पूर्व ही अपनी देह का परित्याग कर देते हैं ताकि उनके बच्चे गुरु अभाव में कष्ट उठाने के बाद पुरुषार्थ द्वारा, साधन–भजन द्वारा अपनी सुरक्षा स्वयं करना सीख जाये, अपने आप पर निर्भर हो जाये।

तत्पश्चात गुरुदेव भगवान ने उनका अगला जन्म दिखलाया जिसमें वह गृहस्थी के रूप

में दिखलायी पड़े। इसके बाद ही गुरुदेव ने उनका उनका पाँचवा पूर्व जन्म दिखलाया जिसमें वे सन्यासी वेश में दिखलाई पडे, उनकी तपस्थली भी दिखलाई और यह भी दिखलाया कि इस पाँचवे पूर्व जन्म में भी उनको महाप्रभु श्रीरामलाल जी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त था। उसी आशीर्वाद और तपश्चर्या के कारण यह पुरुषार्थमय जीवन उनको प्राप्त हुआ।

गुरुदेव भगवान ने अमीरानन्द जी पर कृपा की जिसके फलस्वरूप वह अपने अन्तिम ३–४ वर्षों में मन लगा कर साधना कर सके यही गुरुदेव उनसे हमेशा आशा करते थे। योग सम्पदा से युक्त होकर जब प्राण अपने स्वाभाविक समय पर निकलते हैं तो अगले जन्म में जन्म से ही योग की प्रतीति हो जाती है। पिछले जन्मों की भाँति नये जन्म में योग की प्रतीति के लिए पुनः उपाय प्रत्यय का सहारा नहीं लेना पड़ता।

पूर्व जन्मों को दिखलाने के पीछे गुरु का एक ही ध्येय होता है कि साधक को यह ज्ञान हो जाये कि वर्तमान जन्म में जितना आत्मोत्थान होता है वह पूर्व जन्मों में किये गये पुरुषार्थ का ही फल होता है। अतः पूर्व जन्मों में किये पुरुषार्थ से प्रेरणा लेकर वर्तमान में तीव्र संवेगों के साथ इतनी आध्यात्मिक कमाई तो कर ही लें कि भविष्य (आगामी जन्म) में सम्प्रज्ञात समाधि की पराकाष्ठा विवेक ख्याति तक पहुँचने का अवसर प्राप्त हो जाये ताकि असम्प्रज्ञात समाधि में प्रवेश हेतु कोई कठिनाई शेष न रहे।

तीव्र संवेगानामासन्नः

अर्थात्– जिस योगी का उपाय तीव्र होता है और प्रयत्न भी तीव्र होता है उसको शीघ्रातिशीघ्र समाधि लाभ हो सकता है।

अगले जन्म के ज्ञान का भी लाभ है। साधक कुसंस्कारों से सुरक्षा हेतु अपनी योगसाधना में तीव्र संवेग से लग जाते हैं। गुरुदेव के भावना रही है कि जो योग साधक सम्प्रज्ञात योग की वितर्क और विचार समाधि में पूर्णतः प्रतिष्ठित हो चुके हैं देहपात से पूर्व ही उनका योगाभ्यास इतना हो जाये कि अगले जन्म में उनको भव प्रत्यय के योगियों की कोटि में जन्म मिले। विदेह व प्रकृतिलीन भव प्रत्यय वाले साधक 'योगी' होते हैं। इनको अगले जन्म में जन्म से ही योग प्रतीति होती है और वे अति शीघ्र समाधि लाभ की ओर बढ़ जाते हैं।

भाई अमीरानन्द जी सम्भवतः विचारसमाधि के साधक थे गुरुदेव चाहते थे कि उनका देहपात विदेह व प्रकृतिलीन भवप्रत्यय वाले योगी की कोटि में हो ताकि अगले जन्म में जन्म से ही योग प्रतीति प्राप्त हो सके और उत्कृष्ट समाधि लाभ प्राप्त हो सके।

अनपढ़ अमीरानन्द योगी के अनुभव

परम् गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ब्रह्मलीन थे यह बात किसी को मालूम नही

थी। वह दया दृष्टि से सब कुछ कर दिया करते थे। मैंने गुरुजी से श्री सिद्धयोग आश्रम की स्थापना कराई। दो वर्ष में यह आश्रम बन कर तैयार हो गया था। स्थापना में सौलह औषधियों से गुरुजी को स्नान कराया। चार बार स्नान कराया तीन बार आश्रम में और एक बार सहारनपुर में। वस्त्र व बर्तन और रुपयों की माला डालकर पूजा की। गुरुजी ने मुझे पकड़ कर छाती से लगा लिया और कहा–"अमीरानन्द ! तुम मेरे अंग हो तुम्हारा योग सफल होगा। गुरुजी का शरीर शान्त होने से पहले उनका सहारनपुर में प्रोग्राम था। उसी दिन मुझे दूसरी जगह यज्ञ कराना था। मैं १०० रु. नरेश को देकर चला गया और उसको कहा कि पैसे गुरुजी को सौंप दें मैं लौट कर आया तो देखा कि गुरुजी तो दिल्ली चले गये। मैं आश्रम पर आ गया। रात को चिंता में पड़ा रहा शरीर छोड़ने का विचार था। गुरुजी का शरीर पूरा होने के दो दिन पूर्व की बात है गुरुजी ने कहा तुम अभी रहो मैं भी रहूँगा कुछ दिन। फिर मुझे अनुभव कराया अगले जन्म का। पहले पिता के दर्शन कराये वह महात्मा है, छोटी दाड़ी है। चन्दन लगा रखा है फिर माता जी के दर्शन कराये। दातों में सोने की मेक है, गोरा रंग है। मैं उनका अकेला ही लड़का हूँ। कुछ दिन बाद मेरी योग सीखने की इच्छा हुई। माताजी को दुख हुआ किन्तु पिताजी उनको समझा रहे है इसके कर्म में योग है दुःख करने की कोई बात नहीं है। फिर एक लड़की देखी साइकिल चला रही है। थैला टांग रखा है सब्जी लेने मण्डी में जा रही है। गुरुजी ने कहा–इसकी मृत्यु के साथ तुम्हारी मृत्यु होगी। इसकी शादी तुम्हारे साथ होगी। जब तुम मुझ से मिलोगे तुम्हारी उम्र २५ वर्ष की होगी। और फिर दो मंजिला बिल्डिंग दिखाई। मन्दिर है, बाग है और गुरुजी कुर्सी पर बैठे हुऐ हैं। वहाँ हम दोनों पति पत्नी ने गुरुजी के चरण पकड़ लिए। उन्होंने सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। हमको भी मन्दिर, बाग और बिल्डिंग मिली। इसके पास से एक सड़क जा रही है।

यह जगह हरिद्वार और ऋषिकेश बीच में दिखाई। रात के १२ बजे थे गुरुजी ने चौकी पर मुझे बिठाया और स्नान कराया वस्त्र पहनाये और तिलक लगाया, माला पहनाई और चावलों के अक्षत छोड़े। मोर ने एक भी अक्षत नीचे नहीं गिरने दिया। फिर गणेश भगवान चौकी पर बैठे दिखलायी पड़े। उनके चरणों में मुझे लिटा दिया फिर गणेशजी ने सूड़ से मेरे ऊपर पानी डाल दिया। गुरुजी ने कहा–अमीरानन्द ! मैंने तुमको ऐसी जगह पहुँचा दिया है जहाँ कोई योगी भी नहीं पहुँच सकता। तुम्हारे मरने के बाद क्रिया की भी कोई जरुरत नहीं। और फिर बोले–

"देखो अमीरानन्द ! मैं स्वयं अपनी मृत्यु से जा रहा हूँ। मेरे जाने के बाद आश्रम पर लोगों में परस्पर विभेद रह सकता है। वे मुझ पर भी दोष लगा सकते हैं। दोष की कोई बात नहीं वे एक के दो करने चाहेंगे और दो होने मुश्किल हैं। वहाँ प्रभु श्री रामलाल जी महाराज बैठे हुए

हैं धूना जल रहा है और उनका तेज फैल रहा है।" और फिर ठहर कर आगे कहा– "मैं ही किसी न किसी रूप में आऊँगा।"

मैंने यह अनुभव मंत्रीजी को सहारनपुर में सुना दिया था और ब्रजमोहन को भी पत्र लिखा।

आगे मेरा पाँचवे पूर्व जन्म का अनुभव

चकबन्दी जमीनों की हो रही थी पटवारी ने मेरा चक पानी में लगा दिया। मुझे पहले किसी ने बताया नहीं बाद में मालूम हुआ। रात के १२ बजे थे, मेरे मन में दुख हुआ, मेरी जमीन ऊपर अच्छी थी वे मुझे जल में दे गये। वहाँ बीच में एक ऊँचा टापू है। आगे शंकर भगवान खड़े हैं और बीच में सन्यासी वेश में मैं हूँ। मेरे गुरुजी सन्यासी वेश में खड़े तपस्या कर रहे हैं। चोट बना रखा है। एक ने कहा–ये तेरा पाँचवे जन्म का पिछला स्थान है। तीन धूने महात्मा गुरुभाईयों के लगभग एक–एक गज पर होंगे। एक धूना तो उस टापू पर लगा हुआ है और एक भाई के चक पर, और तीसरा नदी के ऊपर है। मुझे बताया गया कि तेरा नाम ज्ञानानन्द और पिता का नाम हर गुलाल था और माता का नाम सत्यवती और ओंकार तेरा मंत्र था। तभी उन्होंने धुनी लगवा दी–ज्ञानानन्द भज ओंकार भज ओंकार। श्री रामलाल जी महाराज मेरे गुरुजी के पास आया करते थे उनका पहला भी आशीर्वाद है।

श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अहीर के घर का जन्म था। जंगल में गायों को चराने जाया करते थे। वहाँ जंगल में एक गीतापाठी महात्मा थे उन्होंने कुछ योग उनसे प्राप्त किया और फिर नदी के किनारे जहाँ प्रभु जी श्री रामलाल जी का धूना लगा हुआ था उनसे योग की शक्ति प्राप्त की। ये महाब्रह्मलीन हो गये। मन में यह संकल्प बनाया कि दुनियाँ से अब मुझे जाना नहीं, शक्ति प्राप्त हो गई । इसी संकल्प से गुरुजी ने घूम–घूम कर दूसरों का उद्धार किया।

माफ करना मैं पढ़ा लिखा नहीं हूँ। ये अनुभव दूसरे से लिखवाये हैं। मेरी उम्र १०६ वर्ष की है।

अमीरानन्द योगी
ग्राम माच्छर हेड़ी
सिद्ध योगाश्रम,
डा०–कोटा मुरादनगर
जि०–हरिद्वार।

***

जानलेवा दुर्घटना से रक्षा

प्रेषक–केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

श्री हरि भगत सिंह जी अहैतुकी कृपा सागर, आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के बड़े ही लाड़ले एवं प्रिय शिष्य हुए हैं। वे लाड़वा ग्राम के मूल निवासी थे। जो हरियाणा प्रान्त के कुरुक्षेत्र जनपद की परिधि में आता है। उनके पुत्र श्री धर्मपाल सिंह जी ने भी उन्हीं अनाथनाथ के चरण कमलों में श्री सिद्धयोग की परम आध्यात्मिक दीक्षा ग्रहण की है। अभी वे जीवित हैं एवं उनकी अवस्था लगभग पचास–पचपन के आस–पास है। दुर्भाग्य एवं संस्कारवश उनकी संगत कुछ गलत लोगों से हो गयी। परिणाम स्वरूप उन्हें शराब पीने की गलत आदत लग गयी। समय के साथ ही उनकी इस आदत ने विकराल रूप धारण कर लिया एवं सन् उन्नीस सौ निन्यानवे तक तो उनका मुख्य आहार शराब ही हो गयी। सुबह से लेकर रात्रि तक वे अपने शब्दों में तो मस्त जीवन व्यतीत करने लगे, परन्तु हमारे आपके शब्दों में वे सदैव विवेक शून्य एवं पागल बना रहा करते थे। सन् उन्नीस सौ निन्यानवे में ही उनके एक मात्र सुपुत्र के साथ एक विलक्षण दुर्घटना घटित हुयी। जिसके परिणाम स्वरूप बाध्य होने पर फिर सही मार्ग पर आना पड़ा।

हमारी आदरणीया गुरुबहन श्री धर्मपाल सिंह जी की धर्मपत्नी जन्म से ही धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रवृत्ति की महिला रही हैं इनका मायका उत्तरप्रदेश के सहारनपुर शहर में है। जो स्थान श्री आराध्यदेव जी का विशेष कृपा पात्र शहर रहा है। उन्होंने सहारनपुर के श्री गुरुदेव के कार्यक्रमों में विवाह से पूर्व भी कई बार सम्मिलित होकर उसका सांसारिक एवं आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त कर लिया था। परिणामस्वरूप श्री गुरुदेव के चरण–कमलों में इनकी श्रद्धा एवं प्रेम का भाव होना स्वाभाविक सा ही है। हमारे आपके श्री गुरुदेव के चरणकमलों में इनके श्रद्धा भाव इस प्रकार के है कि यदि कोई सर्व शक्ति सम्पन्न ईश्वर है तो वे योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं अखिल ब्रह्माण्ड नायक परम योग योगेश्वर महावतार बाबा जी ही है। यद्यपि संस्कारवशात् इनकी दीक्षा श्री गुरुदेव भगवान योगिराज श्री चन्द्र मोहन जी महाराज से नहीं हो पायी एवं उनके लीलावसान के बाद उनके परम प्रिय शिष्य आदरणीय श्री ज्ञानी बाबा जी से इनकी दीक्षा हुई है। श्री ज्ञानीबाबाजी ने इन्हें गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का स्वरूप दीक्षा के बाद प्रदान किया था, जिनका अत्यन्त विधिवत् आरती पूजन किया करती है। प्रातःकाल मन्त्र जाप एवं ध्यान में बैठना इनका नित्य नियम का प्रमुख कार्य है।

एक दिन नित्य क्रिया से निवृत्त होकर स्नानादि के बाद इन्होंने आरती पूजन किया

एवं ज्योंही मन्त्र जाप आरम्भ किये इनका तत्काल ध्यान लग गया। ध्यान में इन्हें श्री गुरुदेव भगवान योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के दर्शन हुए एवं उन्होंने कहा, "लल्ली ! आज एक बहुत बड़ा संकट आने वाला है, खैर घबड़ाने या परेशान होने की रंचमात्र भी आवश्यकता नहीं है, वे अगाध करुणासागर (दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज) संकट का भुगतान सहज भाव से ही करा देंगे।

उनका एकमात्र सुपुत्र जिसकी अवस्था अभी मात्र उन्नीस–बीस वर्ष ही है। उसे अपने पिता जी की शराब पीने की आदत से सख्त नफरत थी। सामने बोलने की हिम्मत तो नहीं पड़ती थी, परन्तु अपनी माता जी द्वारा पिता श्री को उसने कई बार यह समझाने का प्रयास किया कि वे शराब की आदत छोड़ दें। उनकी माता जी ने भरपूर प्रयास कर लिया, परन्तु सफलता नहीं मिली। अपने पिताजी के इस पागलपन के कारण उनका पुत्र काफी दुःखी रहता था। अपने पिताश्री की इन्हीं बुरी आदतों के कारण उसको अपनी पढ़ाई छोड़कर खेती का सम्पूर्ण कार्य इसी अल्प उम्र में पूरी तरह सम्भालना पड़ा। घर पर दूध देने हेतु गौ और भैंसे थी तथा खेती का कार्य सम्भालने के लिए ट्रैक्टर था। बिना किसी नौकर या सहायक के यह बालक अपना पूरा गृहस्थी का कार्य बड़ी मेहनत, लगन और ईमानदारी से किया करता है। यह बालक अपने ट्रैक्टर से अपने खेत की जोताई कर रहा था। चलाते समय नींद आ गयी एवं वह ट्रैक्टर से गिरकर उसके नीचे आ गया एवं कुछ सेकेण्डों में उसके शरीर पर ट्रैक्टर का पहिया जाती तथा उसके हल की फाल (वह हिस्सा जिससे जमीन की जोताई होती है) उसके शरीर को फाड़ने वाला था कि परम योग योगेश्वर अखिल ब्रह्माण्ड नायक दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने तत्काल प्रकट होकर उसकी दाहिनी बाँह पकड़कर ट्रैक्टर के नीचे से खींचकर बाहर कर दिया एवं कहा "बेटा देखकर ट्रैक्टर चलाया करो एवं अपनी नींद पूरी कर फिर उसके बाद ट्रैक्टर चलाया करो।" उसके मुख मण्डल के चारों तरफ कौंधने वाली बिजली की तरह एक गोला गोलाई में बहुत तीव्र गति से चक्कर लगा रहा था। अखिल ब्रह्माण्ड नायक ने फिर कहा कि, "बेटा ! तुम्हारे पिता की शराब की गलत आदत के कारण तुम्हारे परिवार की आध्यात्मिक प्रगति रुकी हुई है। यदि तुम्हारे पिता की यह बुरी लत छूट जाये तो तुम्हारे परिवार की लौकिक व पारलौकिक प्रगति बहुत ही लाभप्रद एवं आनन्ददायक हो जायेगी।" इतना कहकर महावतार बाबा जी अर्न्तध्यान हो गये।

इस विलक्षण एवं अलौकिक कृपा के बाद श्री धर्मपाल सिंह जी का वह लड़का विवेक सैनी अपना ट्रैक्टर लेकर अपने घर आ गया। घर के दरवाजे पर ट्रैक्टर को खड़ा किया एवं अपने पिता जी से बोला, "पिता जी ! अब इसी समय आप तय कर लें कि इस घर में शराब रहेगी या मैं रहूँगा।" शराब के नशे में धुत उसके पिता ने जब उसकी बात नहीं

समझी तो उसने समझाते हुए कहा, "यदि आप चाहते हैं कि मैं आपके साथ इस घर में रहूँ तो आप इसी वक्त शराब न पीने की प्रतिज्ञा कर लें और यदि आप शराब को नहीं छोड़ सकते तो मैं इसी समय घर से निकल रहा हूँ एवं पूरी जिन्दगी वापस नहीं आऊँगा।" अपने इकलौते पुत्र के मुख से यह बात सुनकर श्री धर्मपाल सिंह जी का तीन चौथाई नशा तत्काल उतर गया एवं उससे कहा कि, "बतलाओ बेटा क्या बात है ?" उसने आप बीती पूरी घटना का अपने आदरणीय पिता से वर्णन किया एवं यह भी बतलाया कि श्री प्रभु जी ने कहा है कि तुम्हारे पिता के शराब पीने की गलत आदत के कारण तुम्हारे परिवार की आध्यात्मिक प्रगति रुक गयी है। वरन् तुम्हारे परिवार की हालत कुछ और होती एवं वह अपनी अलग पहचान बना लिया होता। अपने इकलौते पुत्र के मुख से यह बात सुनकर श्री धर्मपाल सिंह जी का शराब का नशा बिल्कुल उतर गया। नशा तो उतर गया परन्तु शराब को सदा के लिए छोड़ना तो बड़ा ही कठिन कार्य था एवं उससे कठिन कार्य यह था कि अपने इकलौते पुत्र को सदा सर्वदा के लिए छोड़ दिया जाय। जो बालक उनके सामने मुँह नहीं खोलता है, वही बालक आज कह रहा है कि पिताजी आज यह बात भी तय हो जानी चाहिए कि आप मुझे अपने साथ रखना चाहते हैं या शराब को।

करीब पन्द्रह मिनट मौन रहने के बाद श्री धर्मपालसिंह जी ने कहा कि बेटा!" आज इसी वक्त से मैं शराब पीना बन्द करता हूँ।" इतना कहकर उन्होंने घर में रखी शराब की कुछ बोतलों एवं पीने वाले पात्र को उठाया एवं घर से बाहर कूड़ा फेंकने वाले स्थान पर फेंक कर आ गये एवं मिट्टी से हाथ-पैर अच्छी प्रकार धोया व स्नान कर योग योगेश्वर द्वय के स्वरूपों के सामने जाकर साष्टांग प्रणाम करते हुए रुंधे कण्ठ से प्रार्थना किया कि प्रभो ! मैंने तो शराब छोड़ दी है परन्तु मेरी इस प्रतिज्ञा की इज्जत आपके हाथों में है। हे प्रभो ! ऐसी कृपा करना कि स्वप्न में भी मेरे मन में शराब पीने की इच्छा न आने पाये। इतना कहते-कहते उनका कण्ठ भर आया एवं उनकी दोनों आँखों से अश्रुपात होने लगा। किसी गुरुभक्त ने ठीक ही कहा है कि-

मेरे गुरुवर है अलबेले,
ये तो करते दूर झमेले।
शिष्य के सिर पर बाँधे,
सेहरा अपने हाथ से।।

***

इस किंकर को कर दो निहाल

हे दिव्य ज्योति के भंडारी, सद्ज्ञान सुगति के दाता।
तेरे पद कमल पूजने को, मस्तक मेरा झुक जाता।।
जग के इस घातक दल-दल से, हे नाथ उठा लो तुम मुझको।
हो परम सम्मिलन जिस पथ से, वह मार्ग दिखा दो तुम मुझको।।

तुम सत्य सदाशिव सुन्दर हो, तुम सत् प्रकाश के अमितकोष।
मुझ में फैला अज्ञान तिमिर, उपकार करो प्रभु आशुतोष।।
यह असत् असुन्दर अशिव तिमिर, तुम ही करुणा कर हर सकते।
हे नाथ अनुग्रह करो तुम्हीं, सद्ज्ञान रश्मि से भर सकते।।

हे नाथ योगियों के स्वामी, तुम शिव शंकर साकार रूप।
जीवन तन्त्री का सुर बेसुर, भर दो इसमें मृदुता अनूप।।
कर क्रिया योग आनन्दपूर्ण, अनपायन योग प्रदान करो।
संसार समर में विजयी हों, अनुचर को शक्ति प्रदान करो।।

पितु-मातु मीत तुम मेरे हो, इस किंकर को कर दो निहाल।
सद्गुरु उद्धार करो मेरा, श्रीनाथ हरे प्रभु रामलाल।।

प्रेषक :
डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी
फीरोजाबाद/गजरौला

श्री सिद्धयोग आश्रम – फीरोजाबाद द्वारा प्रकाशित आरती पुस्तक से साभार।

SIDDHYOG Regd. No. L.Ag. 008 June, 2005

प्रधान कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
सद्विचारों का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ________________

____

____

□□□□□□

नायात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।।

(मुण्डकोपनिषद ३/२/३)

अर्थात्—यह परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि से और न बहुत सुनने से ही प्राप्त हो सकता है। यह जिसको स्वीकार कर लेता है उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि यह परमात्मा उसके लिए अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट कर देता है।

प्रकाशक एवं मुद्रक :– विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसईकलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सँवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक–आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा

PRINTPOINT 0562-2262281